अध्याय प्रथम

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि
अध्याय प्रथम
सैन्धानिक पृष्ठभूमि

मानव समाज में धर्म इतना सार्वभौमिक, स्थायी एवं व्यापक है कि उसके यही स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझे बिना हम समाज को नहीं समझ सकते।

मानव ने जब पृथ्वी पर जन्म लिया तो वह पूर्णता: प्रकृति-पूरुष था। प्रकृति ही उसके जीवन का आलम्बन थी। प्रकृति ही ही उसे स्थायित्व देने के लिए पृथ्वी, उदर-पूर्ति के लिए खाद्यान, तृणापूर्ति के लिए जल, प्रकाश के लिए सूर्य, चन्द्र अंदेर प्रकृति-प्रदत्त जीवनीएवं भोजन की वस्तुएं थीं। वहीं दूसरी ओर आंध्री, वर्षा, तृष्णा, ताप, शीत, अथवा आदि जैसे प्रतिकूल शक्तियाँ भी मानव को रहने में आश्चर्यचकित रह जाती है। स्वाभाविक ही है कि उसे विश्वास होता कि संसार में कोई ऐसी अदृश्य शक्ति अवश्य है, जो मानव से अधिक श्रेष्ठ एवं शक्तिशाली है। कालान्तर में घटनाओं के परिणामस्वरूप मानव उस असाध्य एवं अदृश्य शक्ति पर विश्वास करने लगा। उस शक्ति की श्रेष्ठता को अनंत: उसने अपनी शक्ति को अनन्त 'धर्म' का उदय हुआ।

धर्म क्या है, यह बड़ा ही पेचिदा सवाल है। परिचय के बहुतेरे विद्वान यह मानकर चलते हैं कि धर्म का सम्बन्ध अलोकितकता से है, किन्तु भारतीय दृष्टि के अनुसार, धर्म अलोकितकता में नहीं, वह जीवन का स्वाभाविक तत्त्व है। धर्म न तो पृथकों में है, न धार्मिक सिद्धांतों में। वह केवल अनुभूति में निवास करता है। धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवता का विकास है। मनुष्य में पूर्णता की इच्छा है, अनन्त जीवन की कामना है, ज्ञान और आनन्द प्राप्त करने की चाह है।

1. किसले डेविस, मानव समाज, किताब महत, इलाहाबाद, 1973, प. 442
भारतीय समाज सदा से ही धर्मपरायण रहा है, यही कारण है कि संसार के सभी देशों में भारतीय धर्म को बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। भारतीय धर्म की निरंतरता वैदिक काल से लेकर आज तक बनी हुई है। भारतीय धर्म का सर्वोच्च आदर धर्म है और भारत की संस्कृति और सम्पत्ति धर्म पर टिकी हुई है। एक प्रकार से धर्म भारतीय समाज का मेशूदण्ड है। धर्म भारतीय संस्कृति और जीवन दर्शन का अभिमुख अंग है, धर्म एक प्रकार से अलोकी शक्ति में विश्वस है, जो व्यक्ति के सुख-दुःख आदि में सहायक होता है। वैचारिक जीवन को प्रभावित कर सामाजिक जीवन में उसी व्यक्ति के व्यवहारों को अनुसारहित एवं नियन्त्रित भी करता है।

चौंक मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए स्वभावत: ही मनुष्य पारस्परिक सहभागि और समंद्र का अभिलापा है। वैयक्तिक जीवन धारण की वृत्ति जिस प्रकार उसमें नैसर्गिकी है, उसी प्रकार सामूहिक पूर्वायाप और बाटली जीवन यान्त्र की भावना भी उसमें स्वभावत: नियम और सहज है।

ऐतिहासिक युग के प्रारंभ से ही सभी जगत में धर्म के सम्बन्ध में नाना प्रकार के विचार और विकार चले आ रहे हैं। लोगों का विचार है, हम क्या हैं। संसार क्या हैं? और हमारा इस संसार से क्या सम्बन्ध है? इन तीन निजीवाणों ने धर्म को जन्म दिया है। धर्म, मजहब या रिलीजन विभिन्न दर्शाओं के बाहरी या व्यवहारिक रूप हैं। हिन्दूत्व की धारणा के अनुसार, धर्म अलोकी शक्ति में विश्वस पर आधारित नहीं है, यह जीवन की एक विधि है जो व्यक्ति को उसके वास्तविक कर्त्तव्य का बोध कराती है। समाज में देश-काल, परिस्थितियाँ और सामाजिक पद के अनुसार हमारा जो भी कर्त्तव्य है, उसी को धर्म की संज्ञा दी जाती है। धर्म ‘रिलीजन’ का पर्यायवाची नहीं है। ‘रिलीजन’ से तात्पर्य एक विश्वस और उपासना पद्धति से है।

‘रिलीजन’ शब्द की अपेक्षा धर्म शब्द का अर्थ अधिक व्यापक है। अति: ‘रिलीजन’ शब्द से केवल एक ही उपासना पद्धति का बोध होता है जबकि हमारे धर्म में अनेक उपासना पद्धतियाँ हैं।

धर्म—

धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्। (महाभारत, कन्यापर 313:117)

हिन्दू मतावलम्बियों के अनुसार मनुष्य के चार पुरुषार्थ हैं— अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष।
‘पुरुषार्थ’ से तात्पर्य ‘पुरुषेष्ठयते’ अर्थात् जो पुरुष के (व्यक्ति) के द्वारा वाचित हो, वर्णीय हो। इन चारों पुरुषार्थों का वरण मानव के द्वारा ही होता है किन्तु वास्तविकता यह है कि मानव अनादि काल से अर्थ एवं काम इन दोनों पर ही विशेष बल देता आ रहा है। कारण यह है कि अर्थ एवं काम मानव की आवश्यकताओं के सिद्धे अनुकूल है। मनुष्य सामर्थ्य में यह इच्छा करता है कि वह अधिक से अधिक सुख-सम्पत्ति का भागी बन सके। उसकी जितनी प्रतिस्पर्धा इन दोनों पुरुषार्थों को प्राप्त करने में पायी जाती है, उनतनी धर्म एवं मोक्ष के लिए नहीं होती। वास्तविकता यह है कि धर्म एवं मोक्ष के प्रति उपयुक्त अनुसार व्यक्ति की अतस्त्रस्त निंदा का प्रतीक है। धर्म आत्मा में निर्भर वह रहस्यमय भावना है, जो मानव तथा मानवेतर में भेद स्पष्ट करती है। आत्: यहाँ धर्म शब्द का अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है।

धर्म शब्द बहुत ही व्यापक तथा गूढ़ अर्थ का बोध करता है। साधारणतया अंग्रेजी शब्द ‘रिलीज’ का अनुवाद ‘धर्म’ किया जाता है। इन दोनों शब्दों के अर्थों में कहाँ तक संगति है यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहिए है। ‘रिलीज’ शब्द का प्रयोग मानव इम्यून की रूपासा को धार्मिक करने के लिए किया गया है। इसका एकमात्र लक्ष्य इस्लाम-साक्षात्कार, आध्यात्म-दर्शन, चिर शांति की खोज तथा भावात्मक सत्य को जागृत करना है। ‘रिलीज’ कहने से परस्परात्मक विश्वास, इस्लाम के प्रति श्रद्धा, भिन्नता उपासना भ्राताली और परस्पर सम्झूत उस्ताद-उपास-प्रायश्चित्त आदि का जो एकीकृत भाव इम्यून में उदित होता है, वह ‘धर्म’ शब्द के आचारार्थ में आभासित होता है।

‘रिलीज’ देश भेद से सत्य अथवा मिथ्या ही सकता है किन्तु ऐसा भाव ‘धर्म’ शब्द से नहीं लक्षित होता। दूसरे शब्दों में, ‘रिलीज’ को स्वयंरूपासना की रूपासनी कह सकते हैं, जो देश भेद से सत्य अथवा मिथ्या हो सकती है।

स्पष्ट है कि ‘रिलीज’ शब्द ‘धर्म’ के सीमित अर्थ में ही प्रयुक्त हो सकता है व्यंग्यको ‘धर्म’ की व्यापकता ‘रिलीज’ के अपेक्षा अधिक है। अर्थीत ‘धर्म’ की व्याख्या ‘रिलीज’ (पंथा), कर्म तथा नियम के रूप में यथार्थ की गयी। अब धर्म की व्याख्या श्रुतियों तथा स्मृतियों के आधार पर प्रस्तुत

2. उद्धृत, श्री नारायण नाथ बसु, हिन्दी विश्वकोष (इंसाइक्लोपीडिया इंडिया), भाग-एकादश, कलकत्ता, 1926, पृ. 107-108।
है। 'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से है, जिसका अर्थ है धारण करना। धारण करने से तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी धारण किया जाये, वह 'धर्म' है। परन्तु 'धर्म' की व्याख्या दो प्रकार से हो सकती है— 'प्रियते इति धर्मः' तथा 'धार्यति इति धर्मः'। जो धारण किया गया है तथा जो धारण करता है अवश्य रक्षा करता है। महाभारत के अनुसार, धारण करने के कारण ही इसे धर्म कहा जाता है। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे, वह धर्म है, ऐसा निश्चय है। जो अशान्त एवं दुखी संसार का शमन करे अर्थात् शान्ति प्रदान करे उसका नाम धर्म है।

मीमांसा सूत्र में 'धर्म' के अर्थ को इस प्रकार व्यक्त किया गया है— चोदनालक्षणोऽवर्गों धर्मं। अर्थात् धर्म, वेदों के द्वारा निर्दीशित आदेश है। मीमांसा सूत्र के आधार पर धर्म का अर्थ उस आदेश से है, जो यह बताता है कि किस कर्म के करने से क्रम फल प्राप्त होता है। इसलिए इसकी कर्म मीमांसा भी कहा जाता है। धर्म का अर्थ कर्म के समान है। यहाँ धर्म कुछ सीमा तक संकुचित हो जाता है। धर्म की व्यापकता महार्षी कणाद के वैशेषिक सूत्र से निखरती है। यथा—

"यतीतत्वद्वयद्विनः श्रेयसिद्धः स धर्मः." जहाँ से अभ्युदय की ओर परम आनन्द की प्राप्ति होती है, वही धर्म है अर्थात् धर्म से तात्पर्य यह है कि जो इहजात और इहजात दोनों की समृद्धि को प्राप्त करने में सहायक हो। दूसरे शब्दों में, धर्म वह है जो अभ्युदय, उत्कर्ष, हर्ष, निश्चयस, परमशुम और मोक्ष की पूर्णता को बढ़ाने वाला है।

धर्म बहुत व्यापक शब्द है। अमरकृष्ण के अनुसार, 'धर्म' शब्द के अनेक अर्थ हैं, यथा— सुकुल या पुष्प, सेवक विषयायाम, गरमाज, न्याय, स्वभाव, आचार, सोमनाथ को पीने वाला। निरक्त में धर्म शब्द का अर्थ 'नियम' बताया गया है। इन दोनों के मेल से 'धर्म' शब्द का यही वास्तविक अर्थ निर्देशित होता है।

3. धारणामीमांसाधर्मोऽधारण धर्मः।
   यत् स्मारकारण संस्कृतं स धर्मं इति निरुपयः। महाभारत कर्म पर्व ६९/५८१॥
4. धिन्तासनधर्मः।
5. धर्माः पुण्यरम्यं न्यायं स्वभावाचारं सोमनाथ॥
   उपाय पूर्वारम्भ उपद्ध चायुभवः। अमरकृष्ण श्लोक १३८, पृ. ४२॥
   स्वाधर्मम् सिवं पुण्यं निश्चयसे सुकुलं वृषं। अमरकृष्ण श्लोक २४, पृ. ५२॥
होता है कि जिस नियम ने इस लोक या संसार को धारण कर रखा है, वही धर्म है।

वेदों के अनुसार, धर्म से सुख मिलता है। लोक में भी प्रचलित है कि धन से धर्म होता है,
tथा धर्म से सुख मिलता है।

वेदों, उपनिषदों, गीता और स्मृतियों में धर्म को ध्येय-ध्येय से परिभाषित किया गया है।
ऋग्वेद की ऋषियों में धर्म शब्द पुर्लंग रूप में प्रयुक्त हुआ है।
अथवेद में धर्म शब्द का प्रयोग
धार्मिक-क्रिया-संस्कार करने से अर्जित गुण के अर्थ में हुआ है।

“ऐतरेय ब्राह्मण में धर्म शब्द सकल धार्मिक कर्त्तव्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

छान्दोद्योगपिण्ड में धर्म की व्याख्या की गयी है जिसमें धर्म की तीन शाखा मानी गयी है—
पहली : यज्ञ-अध्ययन-दान अर्थात् गृहस्तस्य धर्म, दूसरी तपस्या अर्थात् तापस धर्म, तीसरा : ब्रह्माचारित्व
आचार्य के गृह में अन्त तक रहना। महाभारत के अनुसार, धर्म से ही पृथ्वी में धारण करने की क्षमता
है, धर्म से ही सूर्य में तपन है, धर्म से ही वातु बहती है। सब कुछ धर्म में ही प्रतिष्ठित है।

भागवत पुराण में धर्म को वृत्त रूप में स्वीकार किया गया है तथा पृथ्वी को गौ रूप में।

6. धर्मं धार्मिते लोकः। (चाणक्य नीतिसूत्र 233)
7. धनाध्ययः तत सुखम।
8. ऋग्वेद पिङ्ग च स्तोष महो धर्माणि तपिष्ठे (1.187.1)
ऋग्वेद - इसमें यज्ञ श्रुतियों अकृत्ति धर्मार्गविधियों ज्ञातम् (10.9.22)
ऋग्वेद - तन धर्मानि आसाते जुड़िजायि चिन्तितिरि। (10.21.3)
9. जूलत, सत्यं तयो राष्ट्रं श्रमो धर्मकिर्च कर्मम्।
पूर्व भविष्य दुःखिते सीर्य लक्ष्मी बल्ल-बल्ले।। —अथवेद
10. धर्मस्य गोपालजीनिति तमसन्युक्त्ये स्वप्नाविविधिनियों नेतांविचंि गमनेऽवेदः।—ऐतरेय ब्राह्मण, 7.17
11. त्रयोधर्मस्यं च ज्ञोध्ययं तन्ममिति प्रथमस्त्र एवैएति ह्वितीयो।

—छान्दोद्योगपिण्ड
12. धर्मं धार्मिते पृथ्वी धर्मं तपते रक्षः
धर्मं वहिति वायुः सर्वधर्मं प्रतिविद्धिम्।। —महाभारत
13. भागवतः 01/161
महाभारत में श्री कृष्ण कहते हैं कि, धर्म मेरा प्रय और श्रेष्ठ पुत्र है, जिसका स्वभाव है सभी जीवों पर कर्मण है। उसके चरित्र से में सभी मनुष्यों में विद्यामान हैं। मृत, भविष्य, हर समय विभिन्न रूपों में हैं। तीनों लोकों में, में कल्याण की सुख्स्वा और स्वागत के लिए हैं। में विश्व, ब्रह्म तथा इन्द्र हैं। सम्पूर्ण विश्व का स्वर्ग और संहारक हैं। अपने के स्थान पर कल्याणकारी सेवु की स्वागत करता हैं। जीव के लिए धर्म में जाने के पूर्व देवता की गर्मिय का खाल रखता है।14 जगत की रक्षा और नाश इन दोनों का ही कारण धर्म है। धर्म हमारे द्वारा विनष्ट किये जाने पर हमारा नाश करता है। और हमारे द्वारा रक्षित होने पर हमारी रक्षा करता है। इसलिए, धर्म का नाश नहीं करना चाहिए, जिससे धर्म भी हमारा नाश न करे।15 याज्ञवल्क्य ने धर्म और समाज में आत्मा और संसार में संसर्ग का वरण करने के लिए आदेश दिया है कि, ‘धर्म के अनुकूल होते हुए भी समाज के विरुद्ध कार्य मत करो।’16 आपस्तम्भ ने अपने धर्मसूत्र में “समय और रीति, जो सज्जनों को स्वीकार हो उसे ही धर्म कहा है। श्रेष्ठ अध्यम है।” इसलिए लिखा है कि जो करने योग्य है वह धर्म है और जो न करने योग्य है वह अध्यम है।16

भारत में धर्म सबसे हठधर्मिता नहीं है। यहाँ धर्म एक युक्तियुक्त संरचना है, जो दर्शन की प्रगति के साथ-साथ अपने अन्दर नवीन-नवीन विचारों का संग्रह करता है। अपने आप में इसकी प्रकृति परिश्रमित और अनिर्धार्य है और वह वैचारिक प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलने का प्रयास करता है।

श्री हैवेल के कथन है, “भारत में धर्म को रखो या हठधर्मिता का स्वरूप प्राप्त नहीं है, बरनू यह माननीय व्यवहार की ऐसी मृत्युधमत परिकल्पना है, जो आध्यात्मिक विकास की विभिन्न स्थितियों में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में अपने आपको अनुकूल बना लेती है।”17

14. महाभारत – अवधारणिक पर्व, 54/11-17
15. धर्म एवं हनुमानता धर्मों रक्षति रक्षिता।
   तस्यद धर्मानं हनुमान्यो मानो धर्मोहितोउपविष्टो।। –मनुस्मृति 7/241
16. कर्मणात्मक विवेकार्थ्य धर्माध्यमो वपवेचरयेत।
   दैर्यायोध्येऽपि: सुख्दु-खादिजि: प्रजा:।।11 –आपस्तम्भ 1-26
17. हिबर्ट जर्नल ‘आर्बन रूल इन इण्डिया, में द हार्ट ऑफ हिन्दूइज्म’ नामक लेख अक्टूबर 1922, पृ. 170
टालस्टाइय का मत है “विज्ञान का आविष्कार चरम सीमा तक क्यों न हो जाय, धर्म के बिना न तो पहले और न अब कोई मनुष्य समाज और विविध-विविधमण पुरुष जिन्दा रहा है, और न रह सकता है।”\textsuperscript{18}

धर्म की महत्ता को बताते हुए डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है कि “जहाँ अनेक सम्यताएं नष्ट हो गयी थीं, उन परिवर्तनों में विलीन हो गयीं, जो पिछले पाँच हजार वर्षों के काल प्रवाह में होते रहे, वहाँ भारतीय सम्यता जो मिल और बेहोशगत की सम्यताओं के समकालीन हैं, अब भी कार्य कर रही है।”\textsuperscript{19}

डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है कि धर्मों ने हमें यह महसूस कराया है कि जीवन में भूख, काम और नौदों की तकाकालिक आवश्यकताओं के अलावा और भी बहुत कुछ है। इसे हमारे जीवन मूल्यों के आधार बने हैं और उन्होंने हमारे स्वभावों और हमारी आकांक्षाओं के सुपल्ल हो सहायता की है।\textsuperscript{20}

प्रसिद्ध इतिहासकार अनलिन्ड डायनबी कहते हैं- “भारतीय धर्म कभी यह दावा नहीं करते कि मानव जीवन का रहस्य केवल वही जानते हैं। वे यह मानने के लिए प्रस्तुत हैं कि इस रहस्य तक पहुँचने के दूसरे रास्ते भी हो सकते हैं। यह यकीन है कि उनकी यह मान्यता विलक्कुल ठीक है। आज ऐसा युग आ गया है जिसमें अगर हम अपने आप नेतनाबूद नहीं करना चाहते तो हमें एक परिवार के रूप में मिलजुलकर रहना सीखना होगा। इस युग में सभी धर्मों के लिए मुक्ति का एकमेव मार्ग है— उदार और सहिष्णुगती भारतीय धार्मिक भावना।”\textsuperscript{21}

धर्म से सम्बन्धित विभिन्न मान्यताएं होने के कारण धर्म के प्रकट रूपों में इतनी विभिन्नता हैं कि इसकी एक सर्वमान्य परिभाषा करना कठिन है। फिर, समाजशास्त्र में, धर्म की वास्तविकता के सन्दर्भ में उसकी संरचना या असंरचना का अध्ययन नहीं किया जाता वरन् सामाजिक जीवन के एक पहलू के रूप में धर्म का अध्ययन किया जाता है। ‘धार्मिक धर्म,’ जो समाज का व्यक्ति का धारण करे

\textsuperscript{18} टालस्टाइय, ‘धर्म और साधारण’, पृ. 9
\textsuperscript{19} डॉ. राधाकृष्णन, ‘धर्म और समाज’, पृ. 116
\textsuperscript{20} राधाकृष्णन, ‘आधुनिक युग में धर्म’, राजकीय प्रकाशन (प्रा.) लि. विल्ली, 1968, पृ. 16
\textsuperscript{21} डॉ. नागपाल, भारतीय समाज, गुप्ता प्रकाशनकेसाल्स, इंदिरा, 1980, पृ. 8-9
वह धर्म है।

वह धर्म की पहली परिभाषा है। जैसे- अग्नि का धर्म उष्णता है- उष्णता न हो तो अग्नि की सता ही नहीं रह जायेगी- ऐसे ही धर्म न हो तो समाज भी अस्तित्वीय न हो जायेगा। धर्म पर ही इसकी संस्कृति अवलम्बित है। अधिकांश पाश्चात्य मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने धर्म को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है।

ई.बी.टायलर ने अपने अद्वैतीय अध्ययन “प्रिमिटिव कल्चर” में धर्म की न्यूनतम परिभाषा देते हुए लिखा कि “धर्म आध्यात्मिक सत्यों में विश्वास है।”

ब्रिटिश मानवशास्त्री रेडकिल्फ ब्राउन ने धर्म को परिभाषित करते हुए लिखा है कि “धर्म सर्वत्र अपने से परे एक शक्ति पर निर्भर एक अभिव्यक्ति है जिसे हम आध्यात्मिक अथवा नैतिक शक्ति के रूप में समझा जाता है।”

सर जेम्स फ्रेमर ने आठ खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक ‘दि गोल्डन बो’ में आदिम लोक-समाजों के धार्मिक विश्वासों और व्यवहारों का एक वृद्धि विवरण प्रस्तुत करते हुए धर्म को परिभाषित करते हुए लिखा है कि “धर्म से मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संस्कृति या आराधना समझा हूँ जिनके सम्बन्ध में हम विश्वास करते जाते हैं कि वे प्रकृति और मानव-जीवन का मार्ग-दर्शन और नियन्त्रण करती हैं।

पी. हानिग्रीम के शब्दों में “प्रत्येक अभिव्यक्ति जो इस विश्वास पर आधारित व सम्बन्धित है कि अलीकंद्रक कार्यों का अस्तित्व है और उनसे सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव एवं महत्वपूर्ण है, धर्म के नाम से सम्बन्धित की जाती है।”

---

22. धर्मनृत्यु धर्मन्मत्याहर्थर्थाः धर्मन् धर्मति प्रजाः। —महाभारत
23. एडवर्ड बी. टायलर, ब्रिमिटिव कल्चर, ब्रेन्टवार्न, न्यूयॉर्क, 1924
24. प. रेडकिल्फ ब्राउन, “सिलीजन एफ्न सोसायटी”, जर्नल ऑफ दि रायल एन्रोपोलोजिकल इनस्टीट्यूट, लॉहार्म, LXXV, 1955
25. सर जेम्स फ्रेमर, दि गोल्डन बो, दि मेकमिलन कं., न्यूयॉर्क, 1950, पृ. 459
26. पी. हानिग्रीम, “सोशियोलॉजी ऑफ सिलीजन”, मैडर्न सोशियोलॉजिकल विश्व, डाइडेन प्रेस, न्यूयॉर्क, 1957, पृ. 452
"बी. मैलिनोवस्की के अनुसार, "धर्म क्रिया एक तरीका है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी, और एक समाजशास्त्रीय प्रगति के साथ-साथ एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।""

एच.एम. जॉनसन के शब्दों में, "धर्म अलौकिक प्राणियों, शक्तियों, स्थानों एवं अन्य वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों एवं रीतियों की एक सुसंयत प्रणाली है : ऐसी प्रणाली जिसका उसके अनुयायियों के व्यवहार और कल्याण पर प्रभाव पड़ता है।"

धर्म को अपनी पुस्तक "दा एलीमेन्टरी फार्म्स ऑफ रिलीजियस लाइफ" में परिभाषित करते हुए दुर्बैम ने लिखा कि "धर्म पवित्र वस्तुओं अर्थात् पृथ्वीकरण एवं निषिद्ध वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों और व्यवहारों की एक एकीकृत व्यवस्था है। विश्वास और व्यवहार ऐसे सब लोगों जो इसका पालन करते हैं, को एक नैतिक समूह जिसे चचे कहते हैं, में संयुक्त करते हैं।"

ओटो ने अपनी पुस्तक "दा आइडिया ऑफ द होली" में धर्म की अत्यन्त सूची कार्यक्रम परिभाषा देते हुए लिखा कि "धर्म पवित्रता की अनुभूति है।"

अमेरिकन समाजशास्त्री बिंगर ने धर्म की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "धर्म विश्वासों एवं व्यवहारों की एक व्यवस्था है जिसके द्वारा एक समूह के लोग मानव जीवन की आधारभूत समस्याओं से संज्ञान करते हैं।"

समकालीन मानवशास्त्री श्रीरंज ने धर्म को एक सांस्कृतिक व्यवस्था के रूप में परिभाषित करते हुए लिखा है कि "धर्म प्रतिकों की एक व्यवस्था है जो मनुष्यों में अस्तित्व की एक सामान्य व्यवस्था"
की अवधारणाओं के प्रतिपादन द्वारा शक्तिशाली, व्यापक एवं स्थायी मनोदशाओं तथा अभिप्रेताओं
को स्थापित करने का कार्य करती है एवं इन अवधारणाओं को एक ऐसे तत्त्वात्मक वातावरण से
आवश्यक करती हैं कि मनोदशाएँ एवं अभिप्रेताएँ अद्वितीयत: यथार्थवादी प्रतीत हों।

धर्म का सम्बन्ध आत्मिक शुद्धता से लेकर लक्ष्य की प्रारंभिक तक संभावित है। लोग इस
gैरिमानव राशि का स्वतंत्र शरीरों तथा स्मृतियों में ढूंढते हैं। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण तथा आरण्यक
श्रृंखल की श्रेणी में आते हैं और इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि स्मृतियों की कोटि को विश्लेषित करते
हैं। इन्हीं पावन इसरों से धर्म का स्रोतशय्य मृदु वार अविच्छिन्न गति से निरंतर होता हुआ मानव
कल्याण में तत्पर है, धर्म की यह मुद्रुलता त्वचाभाविक रूप से मानव जगत में देखी गयी है।

धर्म के स्वरूप

मनुसृति के व्याख्याता मेधाविति के अनुसार स्मृतिकारों ने धर्म के पाँच स्वरूप बताये हैं--

1. वर्ण धर्म
2. आश्रम धर्म
3. वर्णाश्रम धर्म
4. नैतिकता धर्म
5. गुणधर्म

तत्त्वात्मिक के अनुसार धर्मशास्त्रों का कार्य है-- वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों की शिक्षा देना। पूर्व
मीमांसा सूत्र में जैनिय ने धर्म का आशय नदी में बतलाये गये अनुशासनों के अनुसार चलना सुलझाया है।

भारतीय धर्म-शास्त्रों में धर्म का स्वरूप तीन तरह का दिखायी देता है। याज्ञवल्क्य और मनु
ने धर्म के कुछ लक्षण बतलाए हैं यथा- धैर्य, क्षमा, संयम, आस्मो, पौर्ण, शुद्धता (मन एवं बुद्धि
दोनों से), इन्द्रिय निग्रह, झान, विधा, सत्य तथा अक्रोध बताये गये हैं--

32. सी. श्रीदेवी, "सिनियन एवं ए कल्याण सिस्टम" इन एनग्रामालाइजिकल एनार्चेज दु दिस्की ऑफ शीलिङ,
सम्पादित, एम. बान्ग्लर, पृ. 4
यथा-

भृति; क्षण, दमोदरेश्वर शौचमिन्नद्र निम्निः।
धीर्विधा सत्यमकरोधो दरकं धर्मलक्षणाम्।

ये मानव के नैतिक गुण हैं। व्यास जी, ने महाभारत में (समता, प्रेम, संयम, सदाचार को धर्म का सार बताया है।) यह धर्म का दूसरा रूप है। धर्म का तीसरा रूप कर्तव्य से सम्बन्धित है। ब्रह्मचारी, क्षत्रिय और ब्राह्मण यानि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का जो कर्तव्य है वही उनका धर्म है।

विभिन्न आश्रमों और वर्गों के विशेष कर्तव्यों के रूप में धर्म दिखाई देता है। भारतीय धर्मशास्त्रों में धर्म के सम्बन्ध में विभिन्न धाराएँ होते हैं। भी वे परस्पर विरोधी नहीं होते। उनमें समन्वय दिखायी देता है। साथ ही वे में उपनिवेश, गोता, स्मृतियों में दिखे गये कथनों से यह स्पष्ट होता है कि धर्म वास्तव में व्यवहारिक धर्म है। जिसका प्रमुख उद्देश्य योग्य, समृद्ध और समाज के कर्तव्यों को स्पष्ट करता है।

श्री काणे ने लिखा है कि—“धर्मशास्त्र के लेखकों ने धर्म का अर्थ एक मत या विश्वास नहीं माना है। अथवा उसे जीवन की एक प्रकार की आचरण-सहिता माना है। जो एक व्यक्ति को, समाज के सदस्य के रूप में, उसके कार्यों एवं क्रियाओं का नियन्त्रण करता है और जो व्यक्ति के विकास की क्रृति से किया जाता है तथा मानव के अस्तित्व के उद्देश्य तक पहुँचवाने में सहयोगी होता है।”

धर्म समाज और संस्कृति का पोषक रहा है। और यह अर्थ है कि एक अपरिवर्तनीय और अन्तिम धारणा के रूप में प्रतिपादित नहीं है। यही बात धर्म की धारणा के ऐतिहासिक तत्त्वों से समांतर होती है। “भारतीय संस्कृति का धर्म मनुष्यता का गर्म है। वह प्रेम और समता का समान्य और सार्वभौम भाव है। वह किसी जाति, देश, पैगम्बर और ग्रंथ आदि में सीमित नहीं है। ईश्वर के विशेष रूप अथवा उपासना की विशेष विधि से भी उसका समन्वय नहीं है। इसके अतिरिक्त धर्म के सभी रूपों का समन्वय मनुष्य-जीवन के उस परम लक्ष्य में होता है जिसे वैश्विक-दर्शन में अभ्युदय और

33. मनुसृति, अभ्यास-6, श्लोक 66
34. शशुकुन्तला रानी तिवारी, "महाभारत में धर्म", पाटल प्रकाशन आगरा-19, पृ. 123
35. पी.पी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास", हिन्दी संस्थि, उ.प्र. सासन, लखनऊ, 1973, सासन-2, पृ. 31
निषेध सत्याविद्या उद्ध्योग की पराकाशा है। धर्म नैतिक-सामाजिक-आचार का वह रूप है जिसमें जीवन के इन दोनों लक्ष्यों का संगम होता है।”

धर्म के लक्षण (Characteristics of Religion)

1. मनु महाराज ने कहा है— ‘वेदोऽधिविषयः धर्मपूवलम्’ (2/6) अर्थात् समस्त वेद अर्थात् कृ, यजुः, साम और अर्थविद धर्म का मूल है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी यह स्पष्ट कहा है— ‘वेदप्राणिज्ञातो धर्मं हस्यधर्मसाधिपयः’ (6/1/44) अर्थात् वेद में कहा हुआ धर्म है और उससे विपरीत अधर्म है। इस प्रकार धर्म का प्रथम और आधारभूत लक्षण यह है कि शास्त्र अनुसार या वेद द्वारा निर्धारित कर्म ही धर्म है।

2. धर्म का दूसरा लक्षण है— क्रियासाध्यते सति श्रेयस्कर्तव्यम् लोकका।’ अर्थात् किया द्वारा सिद्ध होकर कल्याणकारी होना धर्म का लक्षण है— यह लौकिक पुरुषों का मत है।

3. धर्म का तीसरा लक्षण ऐसा किया गया है— ‘सत्यास्याते, दया दानेन च वर्धित, क्षमाया तिष्ठति क्रोणानिर्यः’ अर्थात् धर्म की उत्पत्ति सत्य से होती है, दया एवं दान से बढ़ता है, क्षमा में वह निवास करता है और क्रोध से उसका नाश होता है।

4. धर्म का चौथा लक्षण उपनिषद के अनुसार यह है— कि धर्म समस्त विश्व का आधार या नींव है क्योंकि इसके द्वारा यथिका के आचरण की वे समस्त बुराईयों दूर हो जाती हैं जो कि विश्व कल्याण के विपरीत हैं।

5. कौटिल्य के अनुसार— धर्म यह राष्ट्रवत सत्य है जो कि सारे संसार पर शासन करता है यह धर्म का पाँचवां लक्षण है।

6. धर्म का छठा लक्षण यह है कि “जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा दे, वह धर्म नहीं है वरिष्ठ ‘कूठ्रम्ः’ है। जो धर्म समस्त धर्मों का अविभोग है, वही यथार्थ धर्म है।”

36. शाकुनतला रानी तिवारी, ‘महाभारत में धर्म’, पाटल प्रकाशन, आगरा, 1970, पृ. 132
37. धर्मों यो बाध्यते धर्ममेः सत्यम् कूठ्रम्ः।
अविभोगेः त यो धर्मम् सत्यविभक्तमहः।
विपरीत है वह ‘अधर्म’ कहलाता है।

7. धर्म का सातवाँ लक्षण यह है कि स्वधर्म ही श्रेय है और पराये धर्म का त्याग ही कल्याणकारी है। गीता में श्री कृष्ण का निर्देश है कि “पराये धर्म का आचरण कितना ही सुखकर क्यों न हो, तो भी उसकी अपेक्षा स्वधर्म ही अधिक श्रेयस्कर है, चाहे वह स्वधर्म विगुण अर्थात् सदोष भले ही हो। स्वधर्म-पालन में यदि मृत्यु हो जाय तो वह भी श्रेयस्कर है, परन्तु दूसरों को धर्म भयावह या भर्त्वंको होता है।”

8. धर्म का अन्तिम लक्षण यह है कि–

एक एवं सुहृद् धर्मों निधनेत्यनुपूर्ति यः।
शारीरं समं नाशं सर्वमन्यु गच्छति।।

अर्थात् धर्म ही ऐसा मित्र है जो मरते पर भी जीव के साथ जाता है, और सब तो शरीर का साथ छोड़कर चले जाते हैं।

धर्म के स्रोत (Sources of Religion)

जहाँ तक धर्म के स्रोत का प्रसन है, महाभारत के अनुसार सत्यता, हितकर प्रभाव तथा आचरण धर्म के मुख्य स्रोत हैं। मनुस्मृति के अनुसार धर्म के चार स्रोत इस प्रकार हैं—38 (क) वेद, (ख) स्मृति या धर्मशास्त्र, (ग) धर्मांत्यो लोगों का आचरण और (घ) व्यक्ति का अपना अन्तःकरण। इन स्रोतों का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) वेद हिन्दू धर्म के मूल एवं आधार ग्नन्हें। ‘वेद’ शब्द का वास्तविक अर्थ ‘ज्ञान’ हैं वेद चार हैं— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। इन वेदों में जो मन हैं वे हमारे ऋषियों के दिव्य ज्ञान का प्रकाश हैं। ऋषियों ने जगत की उत्पत्ति, मनुष्य की चरम गति एवं कर्मकाण्ड से

38. वेदोंसिद्धैं धर्म नीलं स्मृतिशीलव च तात्त्विकाम्।
आचारयांचब साधृं आत्म वसुदेवं रेव च।। —मु. 2, प्र. 6
सम्बन्धित अनेक विषयों पर मानव कल्याणार्थ अपनी विश्वासपूर्ण व्यवस्थाएं दी हैं। वेदों का उद्देश्य ‘तमसो मा ज्योतिर्गमय’ है।

(ख) मानव-आचरण के लिए सुन्दरविशिष्ट नियम एवं आदेश का प्रतिपादन स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रों में किया गया है। इन नियमों को यदि अपना कर्तव्य मानकर करें तो वही होगा उसका धर्म का पालन। श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र) के साक्ष्य में मनुस्मृति में लिखा है कि श्रुति और स्मृति में जो कहा गया है वह धर्म कहलाता है। इन दोनों में कहे हुए कर्तव्यों-आचरणों को करता हुआ अर्थात् धर्म का पालन करता हुआ मनुष्य इस लोक में यथा को पाता है और मरकर परलोक में उत्तम सुख या मोक्ष को प्राप्त होता है।

(ग) सत्युपोष या धर्मालंकारों का आचरण धर्म का अन्तर्गत होता है। वेदों के जानने वाले आदर्श पुरुष जो आचरण करते हैं, वे साधारण व्यक्तियों के लिये धार्मिक पद्धतिक होते हैं।

(घ) धर्म का अनित्य दृष्टि स्वयं व्यक्ति का अन्तःकरण है। विशुद्ध अन्तःकरण व्यक्ति को विशुद्ध पयः पर ही परिवर्तित करता है। अतः अन्तःकरण का निर्देश ही हमारा व्याख्याय साध्य बन सकता है।

डॉ. राधाकृष्णन ने भी मनु द्वारा बताये गये धर्म के स्थानों को अपना आधार माना है। धर्म के स्थान मूल रूप से वेद अथवा श्रुति पर ही आधारित है, तथा इसके अन्य रूप केवल काल के परिवर्तन के साथ अधिकार्यों के लिए बताये गये हैं क्योंकि वेदों के द्वारा बताये गये धर्म के नियम हर समय के लिए उपयुक्त नहीं होते जैसा कि आचार्य मेघातिथि कहते हैं- इस प्रकार सब विदेशी समुदाय जैसे भोजक, पंचात्रिक, निग्राथ, अनर्थवादी, पाणिपुत्र तथा अन्य समुदाय यह मानते हैं कि महापुरुषों ने और उन विशेष देवताओं ने, जिन्होंने उन मनों का प्रवर्तन किया उन मनों में निहित सत्य का सीधे प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त किया है और उनका विचार है कि धर्म का उद्देश्य वेद नहीं है।

डॉ. राधाकृष्णन का विचार है कि “धर्म वह अनुशासन है जो अन्तरात्मा का स्पर्श करता है

39. एस. राधाकृष्णन, रिलीजन एण्ड सोसाइटी, हिन्दी रुपान्तर, पृ. 125
और हमें बुराई और कुल्सितता के विरूद्ध संघर्ष करने में सहायता प्रदान करता है। काम, क्रोध, लोभ से हमारी रक्षा करता है, नैतिक बल को समर्पित करता है, संसार को बचाने का महान कार्य करने के लिए साहस प्रदान करता है।’ धर्म को जैसा कि इसके नाम से ध्वनित होता है, एक ऐसी संपत्ति परस्पर बाँधने वाली रचना होना चाहिए, जो मानव समाज की सुदुर्घटना को गहरा करती हो, भले ही उसके ऐतिहासिक स्वरूप में अनेक स्पष्ट जटिलियाँ हों।

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धांत

भव का सिद्धांत

अपने प्राचीन काल से यह धारणा चली आ रही है कि धर्म का सृजन सर्वप्रथम मनुष्य ने अपनी सामाजिक मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए किया। यह मान्यता प्राचीन ग्रीस और रोमन समाजों में प्रचलित थी। इस विचार को सर्वप्रथम प्रसिद्ध दार्शनिक एवं कवि ल्यूक्रेटियस ने प्रस्तुत किया और यह स्वीकार किया कि ईश्वर में मानवीय विश्वास केवल भावना के कारण है और इस भावना से उत्पन्न भय से बचने के लिए ईश्वर की आराधना की जाने लगी। जिसके परिणामस्वरूप धर्म की उत्पत्ति हुई। अतः धर्म की उत्पत्ति का मूल कारण है।

अध्युतन काल में अठारहवीं शताब्दी के दार्शनिक डेविस ह्यूम ने अपनी पुस्तक Nature History of Religion में यह स्वीकार किया है कि प्रारूपित शक्तियों वाले देवताओं के भव से मनुष्य ने ईश्वर में विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया, ताकि इन शक्तियों को प्रस्तुत रखकर वह किसी प्रकार की हानि से बचा रहे। इस मत को स्वीकार करने वाले अन्य विचारकों में उद्धरणात्मक शताब्दी के जर्मन-इंग्लिश विचारक फ्रेडरिक मैकस्मूलर ने कहा कि धर्म का मूलाधार अभूतपूर्व और डरावनी शक्तियों में मनुष्य का भयपूर्ण सम्मान प्रस्तुत करना है। इस प्रकार गिलिंग्स ने भी रहस्यमयी ‘महान भवानक’ शक्तियों में मनुष्य का सम्मान प्रदर्शित करना धार्मिक विश्वास का मूलस्थ्य माना है।

सर्वांतवाद (एनिमिज्म) का सिद्धांत

सर्वांतवाद वस्तुतः अंग्रेजी शब्द 'एनिमिज्म' का भावानुवाद है। एनिमिज्म लैटिन भाषा के
‘एनिमा’ शब्द से बना है जिसका तात्पर्य है आत्मा। एडवर्ड बी टायलर⁰ ने सर्वप्रथम सन् 1781 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ‘Premitive Culture’ में इस सिद्धांत की व्याख्या धर्म की उत्पति के कारणकारक विवेचन में किया है। सर्वत्रवाद का तात्पर्य है, वह विश्वास जिसके आधार पर आदिम मानव सभी प्राकृतिक पदार्थों एवं प्राणियों में ‘आत्मा’ को अन्तर्विश्वसनीय मानता है। उसका आधारभूत विश्वास होता है कि जिस प्रकार मानव में आत्मा समाविष्ट है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों एवं प्राणियों में आत्मा अन्तर्विश्वसनीय है। वह यह मानता है कि जिस प्रकार उसकी अपनी गतिविधियाँ उसकी आत्मा द्वारा निराधारी होती हैं, उसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओं की गतिविधियाँ भी उनमें समाविष्ट आत्माओं के द्वारा नियमित एवं नियन्त्रित होती हैं। उसे सम्पूर्ण बाह्य प्रकृति में आत्मा की स्वतंत्रता दिलाने की लक्ष्यता है और तब प्रकृति की प्रकृत त्रिगतीमार्ग सरकार करता है। वह शुभ शक्तिशाली आत्माओं को अपने कल्याण के लिए प्रस्तुत रखने का योग्य तत्त्वात्मिक विचार स्थापित करने का प्रयास करता है। यहाँ एक से दूसरे शक्तिशाली आत्माओं को अपने कल्याण के लिए प्रस्तुत रखने का योग्यता संबंधित नियमकरण करता है। इसी दावा से आदिम मानव के मन में धर्म की भावना का उदय हुआ। यही धर्म की उत्पति का मूल कारण है। टायलर का मत है कि आत्मा की धारणा ही "आदिम मनुष्यों से लेकर सभी मनुष्यों तक के धर्म के दर्शन का आधार है।"¹

टायलर का सर्वत्रवाद बस्तुतः दो महान सैद्धांतिक मतों में विभाजित है: प्रथम मत वैज्ञानिक प्राणियों की उस आत्मा से सम्बन्धित है जो मृत्यु या शरीर का विनाश हो जाने के उपरात के बाना रहता है और द्वितीय मत वैज्ञानिक प्राणियों के आत्माओं के अतिरिक्त अन्य आत्माओं से सम्बन्धित है। इसके लिए शक्तिशाली देवताओं की आत्माएँ संपन्न नातिनंदक श्रेणी क्रम में अवरोधत हैं। इस संपन्न नातिनंदक श्रेणी क्रम में वे आत्माएँ प्रेततात्माओं से लेकर शक्तिशाली देवताओं की श्रेणी तक होती हैं जो न केवल अलंकृत हैं प्रजन इस जगत की सभी प्राणियों एवं मानव जीवन की सभी गतिविधियों को निर्देशित

⁰ टायलर, विगुणित कल्पना, जान मूर्ख, लंदन, 1920
¹ वही, प. 421
व नियमित करती हैं। इन आत्माओं को प्रसन्न रखने के लिए आदिम जन इनकी पूजा और आराधना करने लगे, जिससे धर्म की उत्पत्ति हुई।

टायलर का कहना है कि आदिम जानवरों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में जीवन और छाया पायी जाती है। जीवन के द्वारा ही व्यक्ति सोचता-विचारता और काम करता है और छाया उस जीवन की स्रावस के रूप में कार्य करती है। जीवन और छाया को एक साथ मिलाकर 'आत्मा' की धारणा बनी हुई कही जा सकती है। इसलिए टायलर के अनुसार आत्मा एक प्रकार की छाया है जिसे उसने एक पतली निराकार मानव प्रतीमित, आकृति में कोहरा, चलचित्र या छाया के सदृश बताया है।

इसी आधार पर शायद आदिम जानवरों के अन्दर ऐसी धारणा बनी कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी आत्मा स्वप्न की अवस्था में शरीर को छोड़कर स्वतंत्र रूप से घूमती रहती है और विभिन्न प्रकार का अनुभव लेकर फिर बाद में शरीर में बापस चली जाती है। इस प्रकार की आत्मा को उन्होंने स्वतंत्र आत्मा के नाम से सम्बोधित किया।

उल्लेखनीय है कि आदिम जानवरों को शरीर से पूर्णतया भिन्न स्वरूप का नहीं समझती है। प्र. रघुवरन दूबे ने अपनी पुस्तक ‘मानव और संस्कृति’ में लिखा है कि संतापवाद की श्रेणी में रखा जाने के अनुसार विश्वास भारत के प्रायः प्रत्येक आदिवासी समूह में बड़ी सरलता से पाये जा सकते हैं। मिर्जापुर के आदिवासी कोरवा लोगों के समस्त में मजबूत नाम ने लिखा है कि उनके लोक-विश्वास के अनुसार फसल, कर्ष तथा गाय-बैल आदि का नायककर्ता करने वाली आत्माएं होती हैं जो कोरवा जनजाति का अन्य समस्ती जनजातियों, जाति के पुजारी तथा जाति के नायक आदि के प्रति दृष्टिकोण निर्धारित करती हैं।

प्रतापवाद

प्रसिद्ध समाजशास्त्री हरबर्ट स्मेन्स ने अपनी पुस्तक ‘Principals of Sociology’ में यह

42. इ.डी. टायलर, प्रिमिटिव कलाम्य, जान मूर्त, लंदन, 1920, प. 429
43. रघुवरन दूबे, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन प्राइंटर लिमिटेड, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1982, प. 261-262
44. यही, प. 262
बताया कि धर्म की उत्पति मुख्यत: प्रेत के भय से हुई है। यह विश्वास किया जाता था कि पैतृक आत्माओं जिनमें आदिम मनुष्य के अनुसार आलोचक शक्तियाँ विद्रमान थीं, सारे मानवीय क्रिया-कलापों और प्राकृतिक शक्तियों को नियंत्रित करती हैं। इसलिए अपने हित में कार्य करने के लिए आदिम मनुष्यों को उनकी शान्ति कराने का आवश्यक थी।

अतः मृत पूर्वजों की प्रेतात्माओं की पूजा करने की प्रकृति से ही धर्म की उत्पति हुई है। संसार का मत है कि मृत पूर्वजों की आत्माओं की पूजा ही वास्तव में धर्म का अति प्राचीन रूप है।

जीवतत्त्ववाद या मानववाद (एनिमेटिज्म)

जीवतत्त्ववाद वह आदिम धार्मिक विचारधारा है जिसके अन्तर्गत अज्ञात एवं अदृश्य जगत में किसी आलोचक, आमूलिक एवं आवेदनिक पहलू विश्वासप्रद जीवतत्त्व सदृश शक्ति में विश्वास किया जाता है, जो विश्व के सभी सजीव एवं निर्जीव चेतन एवं अचेतन विषयों में वास करती है और सभी प्रकार के सुभो और असुभो क्रियाओं में क्रियाशील रहती है और यदि उचित रूप में उस पर अधिकार या नियंत्रण रखने का प्रयास किया जाये तो वह आर्थिकजनक फल देने में सामर्थ्य हो सकती है। प्रसिद्ध इंग्लिश मानवशास्त्री राबर्ट रानुल्फ़ मैरेट का मत है कि जीवतत्त्ववाद को धर्म की उत्पति की मूलस्थ स्रोत मानना चाहिए।

इस अवकाशित शक्ति के लिए मानवशास्त्री आर.एच.कोर्डिङ्गटन ने सर्वप्रथम 'माना' शब्द का प्रयोग किया। मैरेट ने 'माना' में विश्वास को जीवतत्त्ववाद बताया। 'माना' शब्द का प्रयोग मैलानेश्वर के लोग किसी आर्थिकजनक शक्ति वाले व्यक्ति, पसू या निर्जीव वस्तु के लिए करते हैं। राबर्ट एच. लोबी ने 'माना' कि व्यवहार 'एक ऐसे विद्युतसम प्रवाह से की है जो व्यक्ति और वस्तुओं को प्रभावित करता है और एक दूसरे में अपवादित हो सकता है।'45

'माना' को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि यह एक आवेदनिक, आमूलिक एवं रहस्यमय जीवतत्व शक्ति के सदृश है जो विश्व के सभी सजीव एवं निर्जीव विषयों में पायी है और

45. राबर्ट एच. लोबी, एन इन्ट्रोडक्शन दु कल्चरल एनिमेटेंशन, न्यूयर्क, 1934, पृ. 303
जिसके प्रति श्रद्धा, विस्मय व भय का संचार होता है और जिसे प्रायः शक्ति, जीवन और संकल्प तीन स्थायी सम्पत्तियों के समग्र के रूप में आदिम-जन सर्वनामक मानकर धार्मिक कृत्यों द्वारा उसकी पूजा करते हैं।

कॉर्नरिंगटन के अनुसार “यह (माना) एक शक्ति है जो कि भौतिक शक्ति से सर्वथा भिन्न एक ऐसी शक्ति है जो सभी प्रकार के श्रुण्ड और असुंय क्रियाओं को सम्पादित करती है और जिस पर अधिकार या नियन्त्रण होने से सर्वज्ञ होता है। यह एक शक्ति या प्रभाव तो अवरोध है, किन्तु भौतिक शक्ति नहीं है और एक अर्थ में यह एक प्रकार की अलौकिक शक्ति है, किन्तु इतनी अभिव्यक्ति की भौतिक शक्ति या किसी मानवीय शक्ति अथवा उल्कपन्न में होती है। वह अलौकिक इस अर्थ में है कि यह प्रत्येक वस्तु पर प्रभाव डालने के लिए जिस रूप में कार्य करती है, वह मनुष्य की सामाजिक शक्ति से परे है और प्रकृति की सामाजिक प्रक्रिया से बाहर है।”

प्रकृतिवाद

धर्म की उत्पत्ति के स्रोत की व्याख्या करने के सन्दर्भ में जीवतत्ववाद से भिन्न प्रकृतिवाद के अन्य सिद्धांत का प्रतिपादन मैक्समूलर ने किया है। उनका मत है कि धर्म का मूल स्रोत प्रकृति है। आदिम मानव ने जब प्रकृति के असाधारण और विलक्षण विकार और भंतिक एवं प्रभावों को देखा तब उन्हें वह अपनी भाषा द्वारा समझने और संज्ञाएं देने का प्रयत्न करने लगा। उसे इन प्राकृतिक, भौगोलिक और भौगोलिक उदाहरणों में मानवीय, कृत्यों की परछाई दिखाई पड़ी और इनका वर्णन करने के लिए वह इन शक्तियों का मानवीकरण करने लगा। उसे आचार हुआ कि प्रकृति में अवरोध किन्तु सर्वशक्तिमान कोई मानवता शक्ति है जो प्रकृति के सभी क्रम-परिवर्तनों को संचालित एवं नियंत्रित करती है। इस शक्ति के प्रति आदिम मानव के न केवल भय, श्रद्धा एवं आदर की भावना उद्दृढ़ हुई बल्कि उसे मानवता एवं देवी शक्ति के प्रभावों की अनुभूति हुई और जिसकी अभिव्यक्ति पूजा, प्रार्थना एवं आत्मसमर्पण के रूप में हुई। इस प्रकार प्रकृति की असीमता एवं विशालता की अनुभूति से धर्म की उत्पत्ति हुई है।

46. आर.एच. कॉर्नरिंगटन, 'वि मैलानेशनल्स आक्सफोर्ड', 1891, प. 119
आदिम मानव में प्रकृति की विकार्य एवं भयानक प्रगटनाओं के प्रति धार्मिकता या धर्मपरायणता का प्रादृश्य कैसे हुआ, इसके उत्तर में मैं समूल का कहना है कि जब आदिम मानव प्रकृति के समर्थ में आया तब उसकी विलक्षणता को देखकर उसके मन में कौटुक्त मत आश्रय की भावना पैदा हुई। इसके समाधान में उसमें जिन विषयों, भावनाओं एवं व्यवहारों का प्रतिपदन हुआ उससे धार्मिकता या धर्मपरायणता की सृष्टि हुई।

धर्म का सामाजिक सिद्धान्त

सामाजिक आचारों पर आधारित सुरक्षिमा द्वारा प्रतिपादित धर्म की उत्पत्ति का यह मेधावी सिद्धान्त समाजशास्त्रीय वाक्य में अधिक ग्राह्य रहा है। धर्म की उत्पत्ति की खोज में फ्रेंच समाजशास्त्री इमाइल सुरक्षिमा ने जिस प्रभावशाली एवं सार्वजनिक मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है निस्सन्देह धार्मिक-पवित्र (रिलिजियों - संक्रेड) परिप्रेक्ष्य पर आधारित है। उनके द्वारा धर्म एवं पवित्रता की श्रेणी का किया गया प्रयोग न केवल सामाजिक बन्धन को बाँधने वाला लक्षण, न केवल मानव धिनना एवं संस्कृति की उत्पत्ति की व्याख्या करता है, परंतु मानव मन के गठन को भी उद्घाटित करता है। आधुनिक समाजशास्त्र का एक अत्यंत सुप्रस्ताव एवं सार्वजनिक देवीप्रमाण योगदान है "The Elementory forms of Religious Life" जिसमें धार्मिक पवित्रता' परिप्रेक्ष्य को अत्यंत विस्तृत रूप में अभिव्यक्त किया गया है, सुरक्षिमा ने अपनी पुस्तक में धर्म की प्रकृति, उत्पत्ति के कारण, प्रभाव आदि के विषय में अधिक विस्तृत तथा सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत की है। श्री सुरक्षिमा का मत है कि धर्म इतनी सरल घटना नहीं है कि इसकी उत्पत्ति परछाई, स्वप्न, प्रतिक्रिया, मृत्यु आदि कुछ सीमित तथा व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर सम्भव है। प्रत्येक धर्म का तो कोई ‘वास्तविक’ आधार श्री सुरक्षिमा के अनुसार स्वप्न- ‘समाज’ है। ‘स्वप्न का सामाजिक एक महामान्यता समाज है” (The Kingdom of Heaven is a glorified Society)। श्री सुरक्षिमा का कहना है कि धर्म की उत्पत्ति उन सामाजिक अभिवृत्तियों से होती है, जिन्हें समाज ने पवित्र मान रखा है। समाज जिसकी ‘पवित्र’ मानेगा, उसे ही धर्म कहा जायेगा। समाज पवित्र वस्तुओं को सदैव पवित्र बनाये रखने के लिए अपवित्र वस्तुओं से सदैव दूर रखने का प्रयास करता है। समाज उन्हीं वस्तुओं को पवित्र घोषित करता है, जिन्हें सामाजिक प्रतिशोधित प्राप्त होता है। इस प्रकार दुरक्षिमा के अनुसार धर्म पवित्र सामाजिक प्रतिशोधित
का उपयोग है। धर्म का हद्द विश्वास या आश्चर्य या बाह्य सत्ता नहीं है, बल्कि पवित्र धारणा है।

दुर्भाग्य का मत है कि, विश्व के सभी धर्मों-चाहे वे उपासनामूलक हों या गैर उपासनामूलक, में पवित्र

वस्तुओं का अस्तित्व पाया जाता है।

दुर्भाग्य इस मान्यता का साथ आगे बढ़ता है कि समाज द्वारा उद्देशित पवित्र वस्तुओं को ही धर्म कहा जाता है। उनका कहना है कि समाज अपने में स्वयं एक सत्ता है। समाज व्यक्ति से आगे देखता है। वह ऊंचाई से सम्पूर्ण पर दृष्टिपात करता है। इसकी व्यवस्था में सारी ज्ञान

वास्तविकताएँ समाहित एवं समाविष्ट रहती हैं। दुर्भाग्य की समाजव्रत्ताओं यह अभ्यस्त समाज के

ऊपर देवताओं आरोपित कर देती है।४७ उसे इर्सिकी गुणों से विभूषण कर देती है और इस प्रकार

दुर्भाग्य के हाथों समाज आध्यात्मिक सत्ता के रूप में प्रतिपादित हो जाता है एवं समाज द्वारा

उद्देशित पवित्र वस्तुएँ धर्म की धृति बन जाती है।

दुर्भाग्य ने धर्म की उत्पत्ति की व्याख्या करते समय इस तथ्य पर विशेष रूप से बल दिया है,

कि धर्म का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण सामुदायिकता एवं सामूहिकता की भावना है।

प्रकार्फ्यवादी सिद्धान्त

मैलिनोवस्की के मतानुसार, संस्कृति का प्रत्येक तत्त्व या भाग किसी न किसी कार्य को करने

के लिए प्रकट होता है। संस्कृति का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है जो हमारी किसी न किसी आवश्यकता

को पूर्ण न करता हो।

चूँकि मानव को अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है। इस कारण वह विभिन्न

संस्कृतिक तत्त्वों को जन्म देता है और इन्हें को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में

व्यवहार करता है। चूँकि धर्म भी एक संस्कृति का एक अंग है, इसलिए उसका भी प्रत्येक संस्कृति में

कुछ न कुछ निर्देशित कार्य होता है, उन कार्यों को करने के लिए धर्म की उत्पत्ति हुई है।

उत्तर विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक विद्वान ने अपने-अपने तरीके से धर्म की उत्पत्ति की

४७. हमाइल दुर्भाग्य, दि एलीमेंटरी फॉर्मस ऑफ रिलीजियस लाइफ, पृ. 492
व्याख्या की है, पर उनमें से न तो किसी सिद्धान्त को सम्पूर्ण असत्य, न ही धर्म की उत्पत्ति का अनिताम कारण मानना चाहिए।

हमने धर्म की उत्पत्ति की चर्चा इसलिए की है ताकि इसके आधार पर धार्मिक चित्रन विभा और धर्म समाजशास्त्रीय विचारधारा पर प्रकाश डाला जा सके। हम अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि धर्म की उत्पत्ति के मूल स्रोत के सन्दर्भ में समाजशास्तियों में एकमतता का पूर्ण अभाव है। मानवीय सामाजिक-सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ धार्मिक अनुभूति के अनेक आयाम उभरते हुए दिखाई पड़ते हैं। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि धर्म के सन्दर्भ में विकास की उपस्थिति मानवशास्त्री व्याख्या समावेशवाद है जिसके आधार पर अन्य मानवशास्त्रीय और बाद में समाजशास्त्रीय व्याख्याएँ विकसित हुईं।

आज के समाजशास्त्री धर्म के उद्देश्य स्रोत की व्याख्या करने में अभिव्यक्ति न लेकर किसी भी समाज के संगठन, उसकी उपलब्धियाँ और प्रगतिका का अंकन करते समय धर्म की पृष्ठभूमि और समाज के सदस्यों को प्रभावित करने वाले धार्मिक कारकों का अध्ययन करना आवश्यक समझते हैं। वे धर्म को एक सार्वभौम सामाजिक प्रगति के रूप में समझने का प्रयास करते हैं। इस सन्दर्भ में वे जाहाँ एक और धर्म के रचनात्मक प्रकार के स्वीकार करते हैं, वहाँ दूसरी ओर उसके अप्रकाश्य कार्य उपद्रवी एवं क्रांतिकारी पक्षों को भी अस्वीकार नहीं करते हैं।

धर्म के प्रकार्य

भारतीय राष्ट्र के प्रयास: सभी संस्कृतियों में भी धर्म को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया जाता है। वे जो किसी परम्परागत धर्म को स्वीकार नहीं करते हैं, किसी न किसी मानवतावादी धर्म को किसी न किसी रूप में स्वीकार अवश्य करते हैं। "आत्मनो मोक्षाय जगतौ हिलाय च" की ध्वनि उनके स्वरों में स्पष्ट मिलती है।

भारतीय समाज-व्यवस्था की आधारिता तो वस्तुतः धर्म ही है, यदि धर्म के विचार को

48. जे. मिल्टन विंगर, रिलीजन, सोसायटी एंड द इण्डियनजुर्मल, मैकमिलन एंड कं., 1957, प. 66
भारतीय चिन्तन-व्यवस्था और लोकचार से निकाल दिया जाये तो इस बात की कपना करना भी कठिन है कि यह व्यवस्था किस प्रकार कुशलतापूर्वक कार्यरता कर सकती है। भारतीय व्यक्ति और समाज के जीवन में अनेक रूपों में और अर्थों में धर्म का विचार इतना अन्तर्वित है कि समाज का स्वरूप निरूपित करने में युगों से धर्म का एक निर्णायक स्थान रहा है। इस धर्म के विचार से ही हम भावना बोलो रहा हमारा ‘स्व-रूप’ नहीं बना रह सकता। हम कुछ और ही हो जायेंगे ‘पर रूप’ ग्रहण कर लेंगे या अरुंध होकर बिखर जायेंगे।'

फ्रेंच समाजशास्त्री इमालु दुखीम ने अपनी पुस्तक ‘The Elementary forms of Religios Life’ में धर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए धर्म के प्रकार्य पर हवाित ही सुन्दर समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है। इसमें उन्होंने धर्म को समाज का उत्पाद माना है एवं उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि धर्म समाज को सर्वोच्च रुप से संकेतित करता है तथा यह रचना, विश्लेषण और समाज के सदस्यों में एकता बढ़ाने के सन्दर्भ में एक सरलता साधन के रूप में कार्य करता है। इस दृष्टि से इसकी भूमिका महत्व पूर्णतया सकारात्मक है। सामाजिक जीवन में धर्म के महत्व को बतलाते हुए दुखीम ने लिखा है कि “धार्मिक विचारों का अनुभव पर आधारित होता है जिसका निर्देशक मूल्य एक अर्थ में, वैज्ञानिक प्रमाणों से कम नहीं होता है। यद्यपि यह उनसे भिन्न होता है।”

इस पुनः लिखते हैं कि “प्रायः सभी महत्व संस्थाओं का धर्म में ही जन्म हुआ है.... चिन्तन एवं विचार की मौलिक श्रेणियों, धार्मिक व्यवस्था की ही अंग है,... धार्मिक जीवन समूह सामूहिक जीवन का श्रेष्ठ स्वरूप एवं संकेतित अभिव्यक्ति है। यदि धर्म ने उन सभी को जन्म दिया है जो समाज में आवश्यक है यह इसलिए क्योंकि समाज का विचार ‘धर्म की आत्मा’ है। वह समाज अपने असंतत्व को नहीं बनाये रख सकता जो बीच-बीच में नियमित रूप से उन सामूहिक भावनाओं एवं सामूहिक विचारों की सराहना एवं प्रतिस्थान नहीं करता जो उसकी एकता एवं उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

49. इमालु दुखीम, दि एलिमेंटरी, फील्डर्स ऑफ रिलिजियन लाइफ, दि मैकमैलिन कं., न्यूयर्क, 1915, पु.
417
50. इमालु दुखीम, दि एलिमेंटरी, फील्डर्स ऑफ रिलिजियन लाइफ, दि मैकमैलिन कं., न्यूयर्क, 1915, पु.
416-427
जी. लेबॉन ने अपनी पुस्तक ‘साइकोलॉजी ऑफ सोशियालिज्म’ में धर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए धर्म के प्रकार्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। वह कहते हैं कि मुतुष्क केवल तार्किक प्राणी नहीं है। वह अपने संबंधों एवं भावनाओं के अनुरूप अनेक अतार्किक एवं अविवेकपूर्ण वस्तुओं में भी विश्वास करता है। विश्वास के बिना मानव जीवन नींव रह सकता एवं भविष्य में भी वह उसका परिहार नहीं कर सकता है, परंतु उसके बदले में वह एक नूतन स्वरूपात्मक ईश्वर एवं विश्वास में आस्था अवरोध रखने से लंबा। इस अर्थ में विश्वास मानव इतिहास का एक अत्यन्त शक्तिशाली कारक है। 51

जे.जी.फ्रेजर ने अपनी पुस्तक ‘साइकेज टास्क, ए डिस्ट्रॉस कांशर्निंग दिइ इन्फ्ल्युएंस ऑफ एस्परिट्यूशन ऑन द ओब्ल ऑफ इन्स्ट्रिट्यूशन’ में धर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए धर्म के प्रकार्यों का विस्तृत रूप से विवेचन किया है। उनके अध्ययन के महत्वपूर्ण निष्कर्ष समालखित हैं -

1. विश्वास मानव-व्यवहार एवं सामाजिक नियमण के प्रभावोत्पादक कारक है।
2. कुल मिलाकर अंतिविश्वासों की भूमिका निरुचायतक रूप से लाभकारी है। 51*

इ.ए.रॉस, जी. सोरेल, डब्लू. जी. समनर एवं ए.जी. केलर के वक्तव्यों के आधार पर मानव-जीवन में धर्म के प्रकार्यों को समझ जा सकता है। रॉस एवं सोरेल ने बहुत ही सावधानीपूर्वक तथा स्पष्ट रूप से मानव-मनोविज्ञान एवं सामाजिक प्रक्रियाओं पर विश्वासों, गाथाओं एवं पुरातात्त्व (मिथक) के प्रभावों को दर्शाया है। रॉस ने अपनी पुस्तक ‘Social Control’ में बहुत ही व्यवस्थित रूप में विभिन्न सांस्कृतिक अभिकर्णों पर विश्वास, धर्म, कानून, कला और विज्ञान इत्यादि के प्रभावों को दर्शाया है। उनका मत है कि सामाजिक प्रक्रियाओं को नियमित एवं नियमित करने में धर्म एक शक्तिशाली कारक है। 52 सोरेल ने अपनी पुस्तक रिस्क्लेक्शन्स ऑन वाबलेन्स में यह बताने का

51. जी. लेबॉन, साइकोलॉजी, ऑफ सोशियालिज्म, अध्याय 1, 111 एवं यद-तब
51*. जे.जी.फ्रेजर, साइकेज टास्क, ए डिस्ट्रॉस कांशर्निंग दिइ इन्फ्ल्युएंस ऑफ एस्परिट्यूशन ऑन द ओब्ल ऑफ इन्स्ट्रिट्यूशन, वित्तीय संस्करण, 1913, पृ. 154
52. इ.ए.रॉस, सोरेल केंड्रोल, अभ्यास 23
प्रयास किया है कि सदियों से धार्मिक विश्वास, मिथक एवं गाथाएँ किस प्रकार मनुष्य के व्यवहार को नियन्त्रित करती रही हैं एवं आज भी कर रही हैं। इसकी सत्यता को अनेकानेक धार्मिक मसैलों, योगदानों, पैगम्बरों एवं अवतारी पुरुषों के द्वारा समझाया जा सकता है। इन धार्मिक नेताओं के उपदेशों से आज का दर्शक व्यवहार नियम नियमित होता है इसे उसके कर्मानि
परम्परागत धार्मिक आचरणों से समझ जा सकता है।[53] बेनजामिन किड ने विश्वास एवं धर्म के सामाजिक प्रकाशों का एक अत्यंत उल्कावत शामिलता का प्रतिपादन किया है। उनका कहना है "धर्म विश्वास के स्वरूप के रूप में व्यक्ति में उस धृतता के आचरण के लिए अति-व्यक्तिगत अनुसारित प्रदान करता है जहाँ उसकी अभिलिप्त है एवं सामाजिक प्राप्ति की आवश्यकता विशेषज्ञता है तथा उसका द्वारा उद्देश्य की सामाजिक अभिलिप्त में पहली पीढ़ी के अधीनस्थ हो जाता है जो प्रजाति-अनुभव कर रही है। समाज के उद्देश्य में धर्म के रूप में विश्वास का स्वरूप कार्य करते योग्य नहीं है, जो व्यक्ति के सामाजिक आचरण के लिए अति-व्यक्तिगत अनुसारित प्रदान नहीं करता है।[54]

जर्मन समाजशास्त्री मैक्सबेवर ने भी अपने अध्ययन की उपलब्धियों के आधार पर यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि धर्म का आधार आधिकारिक तथा अन्य सामाजिक प्रवचनों के निर्देशक या नियमित का कार्य करता है। उन्होंने अपने सिद्धांत के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि प्रोटेस्टेंट धर्म ने आधुनिक पारंपरिक पूजों के कार्यक्रम को प्रभावित किया है।[55] इस धर्म ने व्यक्तिगत उत्थान प्रयास तथा व्यक्तिगत जो पूजावाद के लिए अन्तर्वेदि है, को प्रोत्साहित किया है। बेवर ने अपने निष्कर्षों के आधार पर यह भी कहा है कि भारत और चीन की समस्त आधिकारिक किया जाता है तत्कालिन धार्मिक संगठनों से अत्यधिक प्रभावित रही हैं। इस प्रकार बेवर ने यह निष्कर्ष
निकाला कि किसी समाज की अर्थव्यवस्था उस समाज के धार्मिक स्वरूप द्वारा निर्देशित होती है।

अब तक हमने कठिन तत्त्वों में शोध-अभ्येताओं द्वारा यह दर्शाया कि धर्म आदिमकाल से लेकर आज तक मनुष्य के वैज्ञानिक एवं सामाजिक व्यवहार के नियम एवं नियामन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। अतः सामाजिक एकात्मकता की सृजन, सुधारकरण तथा अनुकूलण के सन्दर्भ में धर्म एक अद्वैतीय साधन रहा है। परन्तु धर्म की इस महान भूमिका को और अधिक ब्रदरीकर्म बनाने के लिए इसके प्रकार को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में रखकर प्रस्तुत करना और अधिक श्रेष्ठकर समझते हैं।

1. मानव व्यवहार को नियमित एवं नियन्त्रित करने में धर्म का प्रकार

धर्म सामाजिक नियन्त्रण का सर्वोच्च प्रभावकारी साधन है। यह सामाजिक आदर्शों का प्रेरक है एवं गैर सामाजिक प्रतिकृतियों को रोकता है। सम्पूर्ण समाज को यह पवित्र मूल्य प्रदान करता है। साथ ही सामाजिक संस्थाओं, कानून एवं व्यवस्था को भी एक मूल्य प्रदान करता है। एलब्रुड ने अपने सिद्धांत में यह दिखाया कि धर्म-धार्मिक, सामाजिक प्रशासनों का निर्धारण भी धर्म ही करता है। मनोवैज्ञानिक रूप से धर्म में वह शक्ति है जो मानव-व्यवहार तथा दैत्यप्रक्षेपों को नियमित करती है। विचारों के सन्दर्भ में जो भूमिका विनेक की है, वही भूमिका भावनाओं के सन्दर्भ में धर्म की है।

हिन्दू विचार परम्परा में धर्म को अतीव गुरू और सेव भाव माना गया है। अपने व्यापकतम अर्थ में धर्म परमेश्वर और अ न भूमि परमेश्वर वरन श्रेय रूप से भी श्रेयस्कर माना गया है। धर्म, पिता, माता, भ्राता, स्वामी सब कुछ है।

2. व्यवहार को संचालित व निर्देशित करने में धर्म का प्रकार

धर्म लोगों को शुभ या पुण्य कर्म करने की दीक्षा देता है ताकि वे पापात्मक कर्मों से दूर रहें।

56. धर्म : पिता च माता च धर्मस्मान: सुहृद तथा।
धर्मस्मार सहा चैव धर्मस्मां स्वामिः पर तथ। —महाभारत आर्यभृत्तिक पर्व-92
विश्व के सभी महान धर्मों में कर्म की धारणा किसी न किसी रूप में विकसित हुई है। सभी धर्मों में यह स्वीकार किया गया है कि अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा होता है तथा कर्म के फल को टाला नहीं जा सकता। धर्म में तो 'कर्म के सिद्धांत' की अवधारणा विकसित है।

3. समाज का एकीकरण करने में धर्म का प्रकारण

विभिन्न सामाजिक मूल्यों, आदर्शों, प्रथाओं व परम्पराओं को स्वीकृत कर धर्म सामाजिक जीवन में एकता की भावना को उद्धृत करता है। दुबीम57 का मत है कि धार्मिक जीवन समग्र सामाजिक जीवन का प्रतिशिठत स्वरूप तथा सार्वजनिक अभिव्यक्ति है। धार्मिक प्रदर्शन सामाजिक प्रदर्शन है जो सामाजिक यथार्थताओं को अभिव्यक्ति करते हैं। धार्मिक कर्मकाण्ड तब प्रतिपादित किये जाते हैं जब समूह के समपूर्ण सदस्य एकत्रित हो जाते हैं। ऐसे अवसरों पर उनमें सामाजिक एकीकरण का चरम उत्कृष्ट प्रकट होता है। “गीता में हर मूल्य को अपने स्वर्ग के अनुसार आचरण करने को कहा गया है, चाहे वह गुणधर्म ही या हंस हो।58 स्वर्ग का आचरण करते हुए ग्रामान्त तक अच्छा कहा गया है, पर परर्धम का आचरण किसी भी दशा में नहीं करता है।59 धर्म की इस भूमिका को धार्मिक औद्योगिक ने अपनी पुस्तक Siciology of Religion में स्वीकार करते हुए लिखा है ‘धर्म व्यक्ति व उसके समूह से एकाकिता स्थापित करता है।’

4. सामाजिक स्थिरता बनाने में धर्म का प्रकारण

धर्म का आधार तर्क की अपेक्षा विश्वास होता है, तब-धर्म परम्परागत सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों को स्वीकृति देकर इसे संरक्षण प्रदान करता है। परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन की गति अतिमन्दतारूपी होती है। धार्मिक मूल्यों को स्थिर रखने के लिए विश्व के सभी महान धर्मों के अन्तर्गत

57. इमाइल दुबीम, पूर्वोक्त।
58. श्रेया न स्वर्गम विगुणः परस्मार्थ्युतिष्टात्।
   स्वाभावितानं कर्म करवतायोगी विक्षिप्तम्।।
   -श्रीमद्भगवद्गीता 18:47
59. श्रेया न स्वर्गम विगुणः परस्मार्थ्युतिष्टात्।
   स्वर्गम निधानं श्रेयः परस्मांत्रे भयावहः।।
   -वेदी, 3:35
विभिन्न धर्म संगठों की स्थापना हुई है। इस प्रकार धर्म में एक ऐसी संरक्षणात्मक शक्ति है जो समाज की परम्परा को बनाये रखने में मदद करती है।

5. विपथगामी व्यवहार को रोकने में धर्म का प्रकार्य

धर्मविवेकताओं का मत है कि धर्म का विपथगामी व्यवहारों को रोकने में महान योगदान है। धर्म हमें 'या करना चाहिए' और 'या नहीं करना चाहिए' का आदर्श प्रस्तुत करता है। संकेत में हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य धर्म द्वारा परिभाषित होता है। लोग विपथगामी व्यवहारों को करने में इस कारण भी हिचकते हैं क्योंकि वह धर्म विरोधी भी है।

6. सामाजिकरण के क्षेत्र में धर्म का प्रकार्य

सामाजिकरण संस्कृति-आत्मसात करने की प्रक्रिया है। सामाजिकरण की प्रक्रिया में हम सामाजिक मूल्यों, मानदंडों व स्वीकृत व्यवहारों के तरीकों को सीखते हैं। किसी समाज में या मूल्य होते, व्यावसायिक मानदंड होते तथा व्यवहार का कौन-सा स्वीकृत तरीका होगा, ये उस समाज की संस्कृति के अंग ही तथा संस्कृति ही इन्हें निर्धारण करती है। जाहिर है कि संस्कृति धर्म से ऐत-प्रात रहती है। सामाजिकरण की प्रक्रिया में हम संस्कृति को आत्मसात करते हैं जिससे संस्कृति व्यवित्व का अंग बन जाता है।

7. शिक्षा के क्षेत्र में धर्म का प्रकार्य

शिक्षा का क्षेत्र भी धर्म नियत्त्व का एक प्रमुख कारक रहा है। प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शिक्षा, शिक्षक एवं शिक्षार्थी तीनों ही धर्म द्वारा निर्देशित होते रहे हैं।60 यही कारण था कि उन दिनों शिक्षा-जगत में अनुशासनिहीनता की समस्या नहीं थी। धर्म का तात्पर्य सार्वभौम धर्म से है। कुछक वर्तमान प्रख्यात शिक्षा-शास्त्रीयों जैसे सी.डी. देशमुख, एफ.ए.ओलाफसन, एच.एच.श्री श्यामनाथ ने यह सुझाव दिया है कि वर्तमान शैक्षिक समस्याओं का समाधान करने के लिए धार्मिक

60 रघुचंद्र सिंह, गुरुकुल में शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी, दैनिक समाचार-पत्र ‘आज’, वाराणसी, फरवरी, 2, 1971
तथा नैतिक शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य ही नहीं बल्कि अपरिहार्य है। उनका मत है कि धर्म तथा नैतिकता के मूल सामाजिक नियम के अन्तर्गत प्रभावकारी कारक हैं वरनू मानव-व्यवहार के अन्तर्गत प्रभावकारी निदेशक भी हैं।

8. आर्थिक क्षेत्र में धर्म का प्रयास

आर्थिक कार्यक्रम व्यक्ति का मानवीय सम्बन्ध ही नहीं, बल्कि सामाजिक सम्बन्ध भी अभिव्यक्त करता है। वांछित वस्तुओं की शाहिदता और उनका उपयोग वस्तु के उत्पादन अथवा व्यवस्थित रूप में सुलभता के लिए किये जाने वाले प्रयास से सम्बंध माना जाता है, जो व्यक्ति का मानवीय स्वरूप उद्धृतात्मक करता है। आर्थिक क्षेत्र में भी धर्म की नियन्त्रणकारी आर्थिक शक्ति को नकारा नहीं जा सकता। प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अर्थ का धर्मपूर्वक अर्जन, संचय और प्रयोग करने का आदेश दिया गया है।

अनेक समाजशास्त्रियों ने भी अपने अनुसंधान-परिपारियों के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि धार्मिक कारक आर्थिक क्रियाओं के ऊपर काफी प्रभाव डालते हैं। दुःखी है कि समस्तत: सभी सामाजिक संस्थाएँ धर्म में ही आदर्श और हुई हैं एवं धर्म द्वारा नियन्त्रित होती हैं।

मैक्समबर ने भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि धर्म आर्थिक प्रभावकारी को प्रभावित एवं नियन्त्रित करता है। उन्होंने सिद्ध किया है कि प्रोटेस्टेंट धर्म ने आधुनिक पारंपरिक पूर्वजवाद के विकास को प्रोत्साहित किया है।

9. राजनीतिक क्षेत्र में धर्म का प्रयास

अल्पत राष्ट्रीय काल से राजनीतिक जीवन को नियन्त्रित करने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका

61. स्थानकान सिंह, रिलिजियस एजुकेशन इन दि एजुकेशनल इंस्टिट्यूट्स, दीपिका हिन्दू पोस्ट और एनटी कॉलेज़, मुंबई, 1973-74, प. 33-37

62. मैक्समबर, दि स्टडी ऑफ़ सोसाइट एण्ड इकॉनॉमिक आर्मेम्वाइजेशन, प. 150-154

63. इमालड दुःखी: पूर्वकृत।

64. मैक्समबर, पूर्वकृत।
रही है। प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था इसका ज्ञान प्रदान उदाहरण है। मनु महाराज का कथन है कि जिस राज्य में धर्म को अवभ्रमण तथा सत्य को असत्य दबा देता है, उसका हनन कर देता है और समासद इस बात को देखते रहते हैं वहाँ उस पाप से समायद ही नाश होते हैं। धर्म की रक्षा की जाये तो राजा तथा समासद बचे रहते हैं। धर्म नष्ट हुआ तो मरता हुआ धर्म-राजा तथा समासद दोनों को नष्ट कर देता है, इसलिए धर्म का हनन नहीं करना चाहिए, ताकि ऐसा न हो कि धर्म हमारा संहार कर दे।

10. जगत के आधार के रूप में धर्म का प्रकार

हिंदू वादमय में धर्म जगत का आधार माना गया है। महाभारत में कहा गया है कि धर्म से प्रजा धीत होती है, इसलिए धर्म वह है जो संसार को धारण करने में (संसार की व्यवस्था बनाने रखने में) समर्थ हो। महाभारतकार के ही शब्दों में धारण करने से धर्म बना है, इसलिए जिससे प्रजा धारण हो वही धर्म है। महानायायण उपनिषद में भी धर्म को जगत का आधार माना गया है। 65 श्री मदुमगवदुगीता में इस संसार की एक कृष्ण के रूप में कल्पना की गयी है। कृष्ण को उसमें प्रवाहित होने से ही जीवित रखता है। इस रस से हीन होने पर तो कृष्ण निर्जीव काफ़ बन जाता है। संसार रूपी बुध यह धर्म रस दिव्य जगत से प्राप्त करता है। विश्वात्म, समाजशास्त्री एल्बूड का मत है कि “धर्म की मूल्य का तत्त्व है सभी उच्चतर सभ्यताओं की मूल्य।” धर्म विश्व विभीन सामाजिक संसार आधिकारिकताओं, उसके एवं दिव्य दिशा से हल्के सामाजिक जगत होगा। 66 जी.एच.मीस पे ’Religion and Society’ में इस बात का संकेत किया है कि जीवन के आदर्श मनुष्य समाज से न विकसित होकर, दिव्य समाज से ही प्राप्त हुए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवहारों के नियम में धर्म की अद्वितीय भूमिका है। यह बात धर्म विशेषी विचारधारा के समर्थक मार्क्स के इस तकनी ‘धर्म जनता के लिए अफीम है’ से भी स्पष्ट हो जाती है।

65. धर्म से विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा, लोको धर्मसहाय प्रजा उपर्युक्त।
धर्म विश्व अस्पर्कुर्य में सर्वदेह प्रतिष्ठा, तःसदृस्त धर्मसह भवान।
—महानायायण उपनिषद

66. चाल्स ए. एल्बूड, दि रिकल्टेक्सन ऑफ रिलिजन, न्यूयर्क, 1921, पृ. 1-11
धर्म और विभिन्न विचारक

(Religion and Different Thinkers)

धर्म के सम्बन्ध में ऐंग्स्ट कॉम्ब के विचार

समाजशास्त्र के जनक ऐंग्स्ट कॉम्ब की विचारधारा में उनके मानवता के धर्म (Religion of Humanity) सिद्धान्त का अल्पता ही महत्त्व है। इसकी चर्चा किये बिना कॉम्ब का चित्रण अधूरा रह जाता है। कॉम्ब का मानना है कि मानवीय नैतिकता ही धर्म का मूल आधार है और इसे ध्यान में रखते हुए उन्होंने मानवतावादी धर्म की स्थापना का प्रयास किया था। सामाजिक विचार के विकासक्रम में आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक विचार की अनितिम दो कोटियों को विश्लेषित करते हुए यथार्थवाद की ओर धार्मिक प्रगति का मूल्यांकन भी कॉम्ब द्वारा किया गया है। उनका कथन है कि धर्म सामाजिक नियन्त्रण का मुख्य साधन है। सामाजिकता के प्रमुख आधार सहानुभूति तथा रौम की बनाये रखने में धर्म अत्यन्त उपयोगी है। धर्म एवं नैतिकता ही समाज के आधार स्तर हैं। आज के युग में विज्ञान और धर्म को एक दूसरे का विरोधी माना जाता है और इनमें किसी प्रकार के सामंजस्य को स्वीकार नहीं किया जाता है। कॉम्ब अपने युग के महान वैज्ञानिक थे और वैज्ञानिक विचारधारा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योग दिया था। वह हर घटना को वैज्ञानिक दृष्टि से सोचते-समझते थे। 'पाजितिव फिलासफी' उनके वैज्ञानिक विचारों का सबसे सशील प्रमाणित ग्रन्थ है। इसके बावजूद कॉम्ब ने धर्म के सम्बन्ध में अपने महत्वपूर्ण विचारों का प्रतिपादन किया था। उनका दूसरा ग्रंथ 'पाजितिव पालिटित' धर्म के महत्त्व की व्याख्या करने वाला महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। कॉम्ब के धर्म की यह व्याख्या उनके प्रत्यक्षवादी दर्शन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है।

धर्म के सम्बन्ध में दुर्खीम के विचार

इमाइल दुर्खीम ने धर्म के सामाजिक सिद्धान्त के बारे में अपने महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इस सम्बन्ध में उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक 'धार्मिक जीवन के प्रारम्भिक स्वरूप' (The Elementary Forms of Religious Life) अल्पता ही महत्वपूर्ण है। दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति की खोज में अपना अध्ययन आंग्लिया की सबसे आदिम अरुण्टा जनजातियों में धर्म
के विश्लेषण पर केंद्रित किया। इस पुस्तक में दुर्भिम ने धर्म की व्याख्या सामाजिक आधार पर की है। उनका विचार है कि समाज में पार्थी जाने वाली प्रथम स्तर सामाजिक जीवन के द्वारा स्वीकार किये गये व्यवस्थाओं और प्रतिमाओं का प्रतीक है। धर्म एक सामाजिक तथ्य है और इसमें जो धार्मिक विचार और क्रियाएँ पार्थी जाती हैं वे समूह के मान्यताओं की अभिव्यक्ति करती हैं। धर्म मानव समाज की सामूहिक चेतना का प्रतीक है।

दुर्भिम ने अपनी पुस्तक में धर्म के स्वरूप और प्रकृति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने धर्म की प्रचलित अवधारणाओं की आलोचना की है। उन्होंने स्वीकार किया कि अलौकिक राशि में विश्वास को ही धर्म कहा जाता है। सामाजिकता इस अलौकिक राशि को ईश्वर के नाम से जाना जाता है। उन्होंने धर्म को सामाजिक घटना माना है। दुर्भिम ने धर्म की परिभाषा देते हुए लिखा है कि “धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों एवं क्रियाओं की एक संयोजित व्यवस्था है। वे हैं पवित्र राशि जाने वाली एवं निष्ठुर मूर्ति, विश्वास एवं क्रियायें जो एक नैतिक समुदाय के अन्दर संगठित हैं, एक चर्चा कहलाती है, वे सभी जो उसमें भाग लेते हैं। दुसरी तरफ, जिसका इस प्रकार हमारी परिभाषा में स्थान है प्रथम से कम आवश्यक नहीं है, यह दिखाने से कि धर्म का विचार चर्चा से पृथक्कृत नहीं है, यह इसे स्पष्ट कर देता है कि धर्म प्रमुख रूप से एक सामूहिक वस्तु होनी चाहिए।”

चूँकि दुर्भिम ने धर्म को एक सामाजिक घटना माना है। इसी उद्देश्यकृत से उन्होंने सामाजिक घटनाओं और वस्तुओं को दो भागों में पवित्र और अपवित्र में विभाजित किया है। समाज में पवित्र वस्तुएँ रक्षा योग्य होती हैं जबकि अपवित्र वस्तुओं से हमेशा दूर रहने को कहा जाता है। धर्म की उत्पति उन सामाजिक विचारों, विश्वासों तथा मूल्यों से होती है जिन्हें पवित्र माना जाता है और पवित्रता का निर्माण सामूहिक प्रतिनिधित्व पर आधारित विश्वास के द्वारा किया जाता है। चूँकि धर्म का आधार समाज में होता है इसलिए इसे ‘सामाजिक धर्म’ कहते हैं। दुर्भिम ने स्वयं लिखा है कि—

“धर्म का स्वतंत्र स्वयं समाज है। धार्मिक विचार समाज की विशेषताओं के अंतर्गत कुछ नहीं है। पवित्र अथवा ईश्वर के तल समाज का, मानविकरण है और धर्म का सामाजिक कार्य सामाजिक एकता की उत्पत्ति, वृद्धि और स्थिरता में है।”
धर्म के सम्बन्ध में बेबर के विचार

बीसवीं शताब्दी में धर्म के समाजशास्त्र के क्षेत्र में मैक्स बेबर का योगदान काफी महत्वपूर्ण है।
बेबर के विश्वास का मुख्य क्षेत्र धार्मिक जीवन और आर्थिक घटनाओं के बीच प्रत्येक सम्बन्ध स्थापित करना था। उनके अनुसार धार्मिक परिस्थितियाँ और आर्थिक परिस्थितियाँ अन्वेषण करना है। तुलनात्मक
दृष्टि से समाज को परिवर्तित करने वाले कारकों के रूप में धार्मिक कारकों का महत्व सबसे अधिक है।

धर्म के अध्ययन के सम्बन्ध में मैक्स बेबर का मुख्य उद्देश्य धर्म और आर्थिक पहलुओं के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करना था। मनुष्य के आर्थिक जीवन पर
धार्मिक प्रभावों की विचेचना करने के लिए धर्म के आर्थिक नीतिशास्त्र (Economic Ethics of
Religion) को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार आर्थिक परिस्थितियों के निर्धारण में धर्म महत्वपूर्ण
कारक है। बेबर संसार के सभी प्रमुख धर्मों का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचने कि धार्मिक कारक
समाज की आर्थिक नीति का निर्धारण करते हैं। यही कारण है कि बेबर ने व्यक्ति और समाज पर पड़ने
वाले धार्मिक प्रभाव की विश्लेषण की है। उन्होंने धर्म और अर्थ को अन्तःसंबंधित माना है।
मैक्सबेबर ने धर्म की व्याख्या करने के लिए अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'Protestant Ethics and the
Spirit of Capitalism' नामक ग्रन्थ का प्रतिपादन किया था। इस ग्रन्थ के द्वारा बेबर ने यह सिद्ध
करने का प्रयास किया था कि आधुनिक पूर्वीवाद के निर्माण में प्रॉटेस्टेंट धर्म महत्वपूर्ण भूमिका अदा
करता है। प्रॉटेस्टेंट धर्म की आचार संहिता ने ही आर्थिक क्षेत्र में पूर्वीवादी व्यवस्था को जन्म दिया है।

मैक्सबेबर (1950) का कथन है कि धर्म एक परिवर्तक तत्त्व है जो समाज के विकास की
दशा का निर्धारण करता है। भारत में पूर्वीवाद विकास की निम्नतम अवस्था के पीछे हिन्दू धर्म के
आध्यात्मवादी दर्शन की महत्व को वह स्वीकार करता है। उनका कहना है कि हिन्दू धर्म व्यक्ति को
विभिन्न वर्गों में विभाजित कर पूर्व निर्धारित व्यवसाय से मुक्त करता है तथा सम्पूर्ण संसार को मिथ्या
मानता है। हिन्दू धर्म की प्रमुख विशिष्टता यह है कि इसके अन्तर्गत व्यक्ति कर्म के बन्धनों से मुक्त
होना चाहता है। ऐसी स्थिति में समाज में पूर्वीवादी विकास अवरुद्ध हो जाता है।

धर्म के समबन्ध में महात्मा गांधी के विचार

महात्मा गांधी भारत के उन महान निर्माताओं में हैं जिन्होंने अपने सम्पूर्ण कार्य एवं व्यवहार को धर्म पर आधारित माना है। उनके समस्त विचार और कार्य धार्मिक एवं नैतिक भावना से उत्पन्न हैं। उनका विश्वास था कि धार्मिक क्रियाओं के माध्यम से ही जीवन में सफलता प्राप्त की जा सकती है। गांधी जी का जिज्ञासा भी दर्शन है उसका मुख्य आधार धर्म है। उन्होंने 'यंग इण्डिया' (Young India) में लिखा है “मैंने अपने सार्वजनिक जीवन में आज तक जो कुछ भी कहा है तथा जो कुछ भी किया है उसके पीछे एक धार्मिक चेतना तथा एक धार्मिक उद्देश्य है।”

गांधी जी के धर्म की मौलिक विशेषता यह है कि वह किसी समुदाय विशेष अथवा संकुचित भावना से प्रेरित नहीं है। उनका धर्म तो मानव मात्र की भलाई के लिए है। उन्होंने अहिंसा में जिस मौलिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है वह केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है अपितु उसकी परिभाषा में समस्त प्राणी जगत आ जाता है। उन्होंने धर्म की व्यक्ति कर्ता हुए लिखा है- “मैं व्यक्ति कर्ता हूँ कि मेरे अनुसार धर्म क्या है? यह हिंदू धर्म नहीं है, जिसमें अन्य सभी धर्मों के ऊपर मानता हूँ। यह वह धर्म है जो हिंदू धर्म से भी ऊपर है और जो मनुष्य की प्रकृति के अनुसार बदलता रहता है और जो व्यक्ति को सत्ता के सामने खड़ा करता है तथा हमेशा उसकी मुख्ति करता रहता है। यह मानव प्रकृति में स्वायत्त तत्त्व है जो अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति पाने के लिए प्रत्येक बलिदान के लिए तैयार रहता है तथा जिसके प्राप्त न होने पर और अपने सुधितकर्ता के साथ साझाकार होने पर तक आत्मा अशांत बनी रहती है।”

अंत में गांधी जी धर्म की बाहर अभिव्यक्ति पर बल न देकर आन्तरिक स्वरूप को अधिक महत्व प्रदान करते थे।

धर्म के समबन्ध में डा. राधाकृष्णन् के विचार

धर्म की व्यक्ति करते हुए डा. राधाकृष्णन् ने कहा है कि यह चारों वर्णों और चारों आश्रमों के सदस्यों द्वारा जीवन के चार प्रयोजनों (अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष) के समबन्ध में पालन करने योग्य मनुष्य का समूचा कर्तव्य है। जहाँ सामाजिक व्यवस्था का सर्वोच्च लक्ष्य यह है कि मनुष्यों को
आध्यात्मिक पूर्ता और पवित्रता की स्थिति तब पहुँचने के लिए प्रशिक्षण लिया जाय, वहाँ इसका एक अन्यायशीक्षक लक्ष्य इसके सांसारिक लक्ष्यों के कारण इस प्रकार की सामाजिक दशाओं का विकास करना भी है, जिसमें जन समुदाय नैतिक, भौतिक और बौद्धिक जीवन के ऐसे स्तर तक पहुँच सके जो सबकी भालाई और शान्ति के अनुकूल है क्योंकि ये दशाएँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन और अपनी स्वतन्त्रता को आधारस्थिति बनाने में सहायता देती है।

मनुष्य जीवन का प्रणयन 'धर्म' शब्द से धातुर्वर्ष में होता है, जिसका पूरा-पूरा समय योग डॉ. राधाकृष्णन के विचारों में मिलता है। धर्म का मूल सिद्धांत मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करना है, जो भगवान का निवास रूप है।

इसका तात्पर्य यह है कि डॉ. राधाकृष्णन के विचार उपनिषद के विचारों से सम्मिलित हैं। उपनिषदों में आत्मन्त्र की परम-अनुभूति को सभी प्रकार के ज्ञान का मूल माना गया है। इस प्रकार धर्म में यह पूर्व धारणा होती है कि प्रत्येक आत्मा में रमालत्र का निवास होता है। इस बात की पुष्टि दृष्टि के इस उद्देश्य व्याख्यात से होती है “सब धर्मों का सर्वस्वीकृत मूल सिद्धांत यह ज्ञान ही है कि परमात्मा प्रत्येक जीवित प्राणी के हृदय में निवास करता है” 69 समझते हैं कि धर्म का स्तर यही है और फिर इसके अनुसार आचरण करो, दूसरों के प्रति वैसा व्यवहार मात्र करो, जैसा तुम नहीं चाहते हो कि कोई तुम्हारे साथ करे। 70 अतः राधाकृष्णन धर्म को एक शक्ति के रूप में नामांतर जो व्यक्ति के जीवन में मार्गदर्शक होती है, जिससे मनुष्य का सामाजिक जीवन एक सर्वोपरिकृत लक्ष्य तक पहुँचता है। यह शक्ति व्यक्ति की सामाजिक अनुप्रयोगों से परे ले जाती है, तथापि उसकी उपेक्षा भी नहीं करती, क्योंकि सामाजिक जीवन उसके आदर्शों को प्राप्त करने की एक गति है, जिसमें अनेक नतीजे आते रहते हैं। इस नतीजे को खैरचक संतुलित तथा सामने रखना धर्म का कार्य है।”

68. एस. राधाकृष्णन : रिलीजन एण्ड सोसायटी, हिन्दी रूपांतर, प. 123
69. ‘भगवान बासुदेवो हि सर्वभूतिःवास्वितः।
एतन्त्यान हि सर्वेऽवै धर्मशेषशास्त्रम्’
उद्घाटन वही, प. 107
70. ‘कृत्तिका धर्म शर्मा श्रुतिः ज्ञानंवर्गावतम्।
आत्मन: प्रतिकृतिकामिनः परेशानं न समानंद्यावतरतुः।’
उद्घाटन वही, प. 108
71. एस. राधाकृष्णन, पूर्वोक्त, प. 108
यह भी कहा कि धर्म की समस्या प्रकृति में अन्तर्निहित है। यह मनुष्य की आत्मा के विभाजन से उत्पन्न होती है। धर्म की व्याख्या करते हुए उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि "धर्म का अर्थ भय पर विजय, विफलता और मृत्यु का प्रतिकार, भय, मनुष्य की बौद्धिकता का अभिव्यक्ति है, उसे मनुष्य की परिस्थितियों में परिवर्तन करके दूर नहीं किया जा सकता। भय से सच्ची मुक्ति तो ज्ञान या विवेक द्वारा ही मिल सकती है, ज्ञान या विवेक ही वह सत्य है जो भय को दूर भगाता है, जब तक धर्म स्वयं भय की अभिव्यक्ति है तब तक उससे प्राप्त होने वाली सुखशा बहुत महंगी पड़ती है और उससे मानव जीवन विकृत होता है।

अतः राधाकृष्णन् ने सभी परिस्थितियों का अध्ययन करते हुए ऐसे धर्म की माँग की है जो मानवात्मा को मुक्त करता हो, जो मनुष्य के मन में भय को नहीं आस्था को, औपचारिकता को नहीं स्वाभाविकता को, वातावरण की नीरसता को नहीं, नैसर्गिकी जीवन की सरसता को बदल देता हो। और उन्होंने ऐसे धर्म की विशेषता करते हुए कहा है कि धर्म किसी शासनीय अथवा अस्तित्वीय अथवा अन्य उस्त्वों के मनाने की स्वीकृति नहीं, अपना एक प्रकार का जीवन अथवा अनुभव है, यह सत्ता के स्वरूप का दर्शन अथवा अनुभव है। इसे संवेदनशील रूपांतर अथवा आत्मगत करना नहीं कहा जा सकता, अपना यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व की प्रतिकृति है। इससे स्पष्ट होता है कि डा. राधाकृष्णन् ने धर्म के सार को अनुभूति का विषय माना है।

धर्म के समन्य में डा. भगवानदास के विचार

डा. भगवान दास ने धर्म को इस प्रकार व्यक्त किया है, 'धर्म वह है जो विषय को एक साथ प्रकार ग्रहण करता है। यह वस्तु को उस प्रकार रखता है, जैसा वह है। यह एक वस्तु को दूसरे के साथ परिवर्तित करके, तोड़-मोड़ कर अवश्य कर देता है। इसका कार्य, इसकी विशिष्टता, इसकी मौलिक विशेषता, इसका मुख्य स्वभाव तथा प्राथमिकता इसकी एकता का नियम ही इसका धर्म है। धर्म विश्व

72. S. Radha Krishna, Eastern Religion and Western Thought, हिन्दी रूपांतर, दिल्ली, p. 59
73. वही, प. 59-60
द्वारा व्यक्तियों को सामाजिक सम्पूर्णता बनायें रखता है। इस प्रकार व्यक्ति के अर्थ में धर्म विश्व नियम है, जिसे योग तथा ब्रह्म दर्शन में धर्म-मेह कहा गया है। विषय की यह व्यवस्था, जो मानव जाति को, इसके अधिकारों व कर्त्तव्यों तथा कर्मों के कारण तथा परिणामों को परस्पर रूप से सम्बद्ध करता है, और जो एक-दूसरे के सम्बन्धों को इकट्ठा कर एक समाज के रूप में परिणत करता है- यह है मानव नियम का अवधारणा मानव-धर्म। ते पुन: लिखते हैं कि नियम की व्यवस्था जो वेद पर आधारित है, जिसे हमें इस जीवन में तथा इसके अन्तर आनन्द मिलता है, वह है धर्म। डा. भगवान दास धर्म को मानसिक, भौतिक अथवा व्यवहारिक तथा आध्यात्मिक सभी मौलिकों के लिए उपयुक्त मानते हैं। यह मनुष्य के लिए कल्याणमय व्यवस्था है।

धर्म की यह सार्वभौमिकता सम्पूर्ण मानव जाति का आलिंगन करती है। इस अर्थ में धर्म नैतिकता पर विशेष बल देता है। मनुष्यता में यह कहा गया है कि युद्ध में एक राजा का यह धर्म होता है, जब वह युद्ध कर रहा है तो उसे निहत के पर चाहिए। लीला आयुध का उपयोग नहीं करना चाहिए, नुकीले शरीरों से भागना नहीं करना चाहिए, सोते हुए, नग्नताय में दुख लहराना नहीं बनाना चाहिए।

उपयुक्त विवेचन में धर्म को आचार तथा नीति के साथ सम्बन्धित किया गया है। धर्म विश्व की आचार प्रतिष्ठा है। इस कारण इसका सार्वभौम रूप नीतिविषयक है। इसकी पूर्णता मनुष्य को व्यवहार में श्रेष्ठ बनाकर आध्यात्मिक की ओर सुगमता से जाने के लिए मार्ग का अवगाहन करती है।

धर्म के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द के विचार

“मनुष्य समाज के प्रारम्भ से ही मानव के मन में धर्म तथा की खोज रही है। धर्म मनुष्य के भीतर से ही उत्पन्न है, जब बाहर की वस्तु नहीं है। धर्म मनुष्य के पक्ष में प्रकृतिगत है, धर्म मानव के स्वभाव से ऐसे जुडा है कि जब तक वह देह-मन का त्याग नहीं करता तब तक वह इस विषय पर विचारता-गुणाता रहेगा। ज्ञात के इतिहास में ऐसा समय कभी नहीं आया जब मनुष्य की युक्ति और

75. उद्भव मीत्र: धर्म एण्ड सोसायटी, पृ. 10-11
मनुष्य की बुद्धि ने इस जगत के पार की वस्तु के लिए अनुसंधान न किया हो, उसके लिए प्राणप्रण से प्रयत्न न किया हो।” 76

सन् 1893 ई. में शिकागो में (अमेरिका में) निकिल विरज के धर्मों के महासम्मेलन में रहियां, अडम्बरों एवं ब्रह्माचारों से उपर उठकर स्वामी विवेकानन्द ने धर्म की विलक्षण व्याख्या करते हुए कहा कि “जीवन का स्तर जहाँ ही है, इन्द्रियों का आनन्द वही अथवा प्रकाश होता है। खाने में जो उत्साह कुले और भेड़िया दिखाते हैं, वह उत्साह भोजन के समय मनुष्य में नहीं दिखायी देता। कुते एवं भेड़िया का सारा आनन्द उनकी इन्द्रियों में केन्द्रित होता है। इसी प्रकार सभी देशों के निचले स्तर के मनुष्य इन्द्रियों के आनन्द में अथवा उत्साह दिखाते हैं। किन्तु जो सच्चे अर्थों में शिक्षित और सुप्रसूक्त व्यक्ति हैं, उनके आनन्द का आधार विचार और कला होती है, दर्शन और विज्ञान होता है किन्तु आधामकता तो और ऊंचे स्तर की चीज है, अतएव इस स्तर पर आनन्द भी अथवा सूक्ष्म और प्रचुर होता है।” यूरोप और अमेरिका के निवासियों पर स्वामी जी ने यह प्रभाव डालना चाहा कि व्यक्ति अथवा समूह के जीवन की सफलता उसकी आधिशैलिक समृद्धि अथवा बौद्धिक उपलब्धियों पर निर्भर नहीं करके आधामक उत्तराय से निर्भर करती है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि पहले वह धर्म की निःस्रोत सत्य के रूप से अवगत हो।

धर्म के सम्बन्ध में विभिन्न विचारकों के मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृति और उसके निर्माणपर्यन्त मूढ़ समाज के सदस्यों में विशेष जीवन-शैली, पूजा-पद्धति, पवित्रता एवं अपवित्रता की वैचारिक एवं अज्ञात सत्य की मान्यता से मुक्त परिवेश का सृजन करते हैं। इसे धार्मिक परिवेश भी कहा जा सकता है। विश्व के प्रायः सभी समाजों के लोगों में धर्म का अनुपालन करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। लोगों की धार्मिक मान्यताएँ, सर्वशक्तिमान सत्य, प्रतीक, पूजा-पद्धति और अनुपालन करने की प्रवृत्ति अलग-अलग हो सकती है लेकिन उसके अनुपालन का मूल उद्देश्य पशु से भिन्न मानवीय आचरण को बनाये रखना होता है। मानव मूल्यों की निरस्त्तता करने रखने तथा समाजीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति में सदृश, संतुलित एवं अपेक्षित आचरण का विकास करने तथा

76. ‘स्वामी विवेकानन्द की कृतियों में धर्म’, दीनिक जागरण, 31 जनवरी 2004
समुदाय के सदस्यों को स्वीकार्य आदर्श आदि के लिए धर्म एक प्रधान आवश्यकता है। धर्म का प्रभाव व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक अन्तर्क्रिया में दिखायी देता है।

धर्म शब्द के उचित प्रयोग पर गहन विचार करने से स्पष्ट होता है कि इससे न तो किसी सामाजिक निष्क्रिय, न किसी विशेष तत्वज्ञान समस्ती सिद्धांत का बोध होता है। हिंदू वाङ्मय में धर्म शब्द व्यापक होने के कारण कर्तव्य, आचार सहिता, नियम, रीति, नैतिक आचरण तथा आध्यात्मिक उत्पत्ति आदि सार्वजनिक इत्यादि का सम्बंध है। धर्म का अर्थ जीवन प्रणाली भी है। अतः धर्म किसी राष्ट्र, समुदाय तथा समूह में सीमित न होकर एक सार्वजनिक प्रणाली है, जो मानव मात्र का साधन है।

आधुनिकीकरण (Modernization)

बर्तमान में विश्व का कोई ऐसा समाज नहीं है जिसके निर्माता उसे आधुनिक बनाने का प्रयास न कर रहे हों। समाजशास्त्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में भी आधुनिकीकरण की अवधारणा पिछले काल के लोकप्रिय हो गयी है। बर्तमान युग वैज्ञानिक प्रगति और प्रौद्योगिकीय विकास के चरम उत्कर्ष के रूप में प्रसिद्ध है, इस प्रकार की प्रगति और परिवर्तन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शनीय है। मानवीय विचारों में, मानवीय चेतना में, मानवीय अनुभवों और कारणों में नूतनता का साक्षरता देखा जा सकता है। बर्तमान समाज का प्रत्येक मानव आधुनिक विचारधारा को तथा आधुनिक दृष्टिकोण को ही अपनाना चाहता है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक) में आधुनिकता को ही अपनाया जा रहा है। इसके साथ ही नवीन आदर्शों और मूल्यों को ही आत्मप्रसाद किया जा रहा है। आधुनिक युग औद्योगिकीकरण का महत्व अधिक होने के कारण मरीनीकरण के युग के रूप में जाना व पहचाना जाता है। सामाजिक क्षेत्र में नवीन परम्पराओं को अपनाया जा रहा है। शिक्षा के द्वारा तकनीक की शिक्षा को अपनाया जा रहा है तथा इसके प्रचार-प्रसार को ही प्रश्रय दिया जा रहा है।

आधुनिकीकरण की अवधारणा नवीन नहीं है जैसा कि 'एनसाइब्लोपीडिया ऑफ़ सोशल साइन्स' में लिखा है आधुनिकीकरण हाल ही में विकसित की नवीन अवधारणा नहीं है, बल्कि
यह तो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं के लिए एक नवीन शब्द है, जहां कम विकसित कोई नवीन अवधारणा नहीं है, बल्कि यह तो सामाजिक परिवर्तन की पुरानी प्रक्रियाओं के लिए एक नवीन शब्द है, जहां कम विकसित देश उन विशेषताओं को अपनाते हैं, जो अच्छे विकसित देशों के लिए सामान्य है।”

आधुनिकीकरण की अवधारणा मूलतः अंग्रेजी के आधुनिक शब्द से बनी है। आधुनिक का आशय है 'गतिमक्त (डाबनामिज्म) और गतिमक्ता का आशय है परम्परागत विचारों, मान्यताओं, संदर्भों और अंदाजों को छोड़कर नवीन मूल्यों, विचारों, मान्यताओं, समानता प्रजातात्त्विक वैज्ञानिक, स्वतंत्रतावादी आदि आधुनिक मूल्यों को आलमसए करना। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया विश्व संस्कृति का प्रसार (डिप्लॉम) है जो उत्तर प्रविष्टि, ज्ञान, शिक्षा, जीवन के बारे में विवेककृत दृष्टिकोण, सामाजिक सम्बन्धों के बारे में लोकिक विचारधारा, जन सम्बन्धों के लिए न्याय की भावना के आधार पर जिनका सम्बन्ध एक प्रकार के आधुनिक जीवन के लिए एक विकल्प के चयन से है, का चयन एवं इच्छाओं को समझना है।”

सही अर्थों में गांव से शहर की ओर (नगरीकरण), लघु एवं कुटी उद्योगों से कल-कार्यकर्ताओं की ओर (ऑडॉगीकरण), निम्न संस्कृति से उच्च संस्कृति की ओर (संस्कृतिकरण) धर्माधिकार से धर्म निरपेक्षता की ओर (धर्म निरपेक्षीकरण) बढ़ना ही आधुनिकीकरण है।

स्पष्ट रूप से संस्कृतीकरण, परिचितीकरण अथवा औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के एकत्री अथवा सम्बन्धित प्रभाव से जब परम्परागत समाज आधुनिकता की ओर बढ़ता है तो समाजशास्त्री उसे आधुनिकीकरण का नाम देते हैं। सामान्यतः: जब भी विकासवादी प्रक्रिया का सन्दर्भ आता है तो उस प्रक्रिया को आधुनिकीकरण ही माना जाता है। यह एक बहुदिश्च धारणा है जिसका अर्थ प्राय: विकास, गतिशीलता तथा उत्कृष्ट से ही संबंधित किया जाता है। जब भी किसी इकाई, व्यक्ति, समुह, समाज, संसर्ग या राष्ट्र के सन्दर्भ में आधुनिकीकरण का मान्यता प्रकट की जाती है तो इसका अर्थ उसकी प्रशंसा से सम्बन्धित होता है, आलोचना से नहीं। विचारकों ने आधुनिकीकरण को परिवर्तन का वह

1. Encyclopaedia of social Sciences
2. David E. Apter : The Policies of Modernization
स्वरूप माना है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाओं में विकासशील परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिकता को सत्रहवीं शताब्दी से आरम्भ होने वाली प्रक्रिया माना गया जो अद्वितीय शताब्दी के ब्रिटेन की आधुनिकता क्रांति के बाद आधुनिकीकरण में बदला और उन्नति की शताब्दी के उत्तरार्ध तक आते-आते पूर्णि: ‘आधुनिक’ शब्द का अर्थ व्यक्त कर सकने में सफल हुआ। आधुनिकीकरण एक पूर्णि: समाजशास्त्रीय शब्द है तथापि कुछ विद्वानों ने इसे अंग्रेजीकरण, यूरोपीकरण, पश्चात्यकरण अथवा पश्चिमीकरण का ही पर्यायवाची शब्द माना है।

एक मान्यता यह भी है कि पश्चिम सभ्यता को आदर्श मानक परिवर्तित होने की इच्छा या अभिलाषा ही आधुनिकीकरण को जन्म देती है। आधुनिकीकरण में, सांस्कृतिक रूप में, ऐसी विशेषताओं का समावेश होता है जो विकासमुख एवं सार्वभौमिक है। आधुनिकीकरण की अवधारणा अखिल मानवता, जाति निरपेक्ष और गैर सैद्धांतिक है।

आधुनिकीकरण की अवधारणा का मूल वैज्ञानिक दृष्टिकोण में स्त्रितिहृदय है। यह वैज्ञानिक ज्ञान, तकनीकी दक्षता, प्रौद्योगिक संसाधनों को अलग अलग है परंतु आधुनिकीकरण की विशेषता यह है कि सामकालिक समस्याओं के सन्दर्भ में वैज्ञानिक एवं वैश्विक दृष्टिकोण का अंतर्घोषीय। हो सकता है कि किसी समाज में वैज्ञानिक ज्ञान एवं संसाधनों की अधिकता हो परंतु आवश्यक नहीं है कि मानसिक एवं भावनात्मक गुण भी उसी अनुमान में विकसित हो। दूसरे शब्दों में, एक महान वैज्ञानिक आधुनिक मनुष्य के रूप में असफल हो सकता है। तकनीकी रूप से विकसित एवं धनी समाज के लोग आतात्य ही सकते हैं। इसी सन्दर्भ में हमें आधुनिकता को समझना होगा।

आधुनिक मूल्यों एवं परम्परावादी मूल्यों में बंट इसी आधार पर किया जा सकता है कि आधुनिक मूल्य जैसे विज्ञान विकासमुख एवं सार्वभौमिक होने के कारण किसी एक देश या समाज तक सीमित नहीं हैं। आधुनिकता एक धारणा के रूप में सार्वभौमिक एवं सांस्कृतिक है। विज्ञान की तरह आधुनिकता भी किसी जाति विशेष की धरोहर नहीं है बल्कि पूरे मानव समाज की साक्षी धरोहर है। इसका तत्परता यह नहीं है कि सभी आधुनिक समाज एवं संस्कृतियाँ एक जैसी हों। हर समाज का आधुनिकता के प्रति अनुकूलन ऐतिहासिक एवं स्फूर्त रूप धारण कर लेता है। इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। परंतु आधुनिकता के प्रति अनुकूलन और स्वयं आधुनिकता में अन्तर है व्यौंकि निरूपत
रूप से संसार के किसी भाग में आने वाले समय में पूर्ण रूप से आधुनिक समाज की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि आधुनिकीकरण एक सतत् चलने वाली क्रिया है। आधुनिकीकरण की अनवरत चलने वाली प्रक्रिया का पूर्वानुमान डेनियल लर्नर ने करते हुए कहा है कि—

जनमानस में विवेकित्वों के प्रति भय विचारकों को यह साबित करने में कठिनाई उत्पन्न करती है कि पाश्चात्य जनित आधुनिकता एक ऐतिहासिक घटना है, जिसे एक बार प्रहाण करने के बाद स्वायत्त स्वरूप धारण कर लेता है अर्थात् आधुनिकता का उचित मूल्यांकन पूर्वागमी घटनाओं के आधार पर नहीं बल्कि उनके परिणाम के आधार पर करना चाहिए जो कि सतत् एवं सार्वभौमिक होती है।

परस्पर विपरीत संस्कृतियों का आपस में सम्बन्ध इस दोहरे प्रसंग में देखा जाना चाहिए। प्रथमतया परिवर्तनकारी संस्कृतियों के सम्बन्ध में जो सांस्कृतिक दौरों को आधुनिकता की दिशा में गतिशील करती है।

आधुनिक युग में विज्ञान एवं शैक्षणिक के क्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तन हुए हैं, जिसके चलते सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में अनगिनत परिवर्तन हुए हैं और यह परिवर्तन अनवरत रूप से विश्व स्तर पर आज भी चल रहा है। इसी परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिए समाज वैज्ञानिकों ने आधुनिकीकरण जैसी अवधारणा का प्रयोग किया है। पर विशेष तौर पर आधुनिकीकरण की अवधारणा का प्रयोग समाज में होने वाले परिवर्तनों को समझने के लिए किया गया है। इसके साथ आधुनिकीकरण का प्रयोग उपलब्धियों एवं विकासशील देशों में होने वाले परिवर्तनों को समझने के लिए किया गया है। इसी संदर्भ में कुछ समाजशास्त्रियों ने आधुनिकीकरण को एक प्रक्रिया माना तो कुछ ने इसे प्रतिफल (Product) के रूप में स्वीकार किया है। आईजेनस्टाउट (Eisenstadt, 1969) के शब्दों में ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिकीकरण एक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं की ओर परिवर्तन की प्रक्रिया है जो 17वीं से 19वीं शताब्दी तक प्रभावित यूरोप तथा उन्नती अमेरिका में 20वीं शताब्दी तक विद्यमान अमेरिका, एशिया व अफ्रीकी देशों में विकसित हुई।

आधुनिकीकरण को विभिन्न समाज वैज्ञानिकों ने विभिन्न रूपों में स्पष्ट करने का प्रयास किया।
है। इस विषय पर विचारों में विभिन्नता के कारण बहुत सारी परिभाषाएं देखने को मिलती हैं, लेकिन उन सभी परिभाषाओं से यही बात स्पष्ट होती है कि आधुनिकीकरण की अवधारणा का सम्बन्ध वैज्ञानिक मूल्यों से है। यह किसी समाज और संस्कृति के धरों में बन्द नहीं है। आधुनिकीकरण के बहुत सारे आयाम हैं। इसे कई स्तरों पर देखा जा सकता है, जैसे- व्यक्ति, समूह एवं समस्त समाज। इसके अलावा हम बहुत किस्र की आधुनिकीकरण की बात करते हैं, जैसे- आर्थिक आधुनिकीकरण, राजनीतिक आधुनिकीकरण, सामाजिक आधुनिकीकरण, शैक्षणिक आधुनिकीकरण, प्रौद्योगिक आधुनिकीकरण, प्रशासनिक आधुनिकीकरण इत्यादि।

आधुनिकीकरण की अवधारणा

आधुनिकीकरण का प्रयोग द्वितीय महायुद्ध के पश्चात की अवधारणा विद्वानों एवं समाज वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान बाद-बाद एवं अनिरंत्रता का विषय रहा है। आधुनिकीकरण शब्द अंग्रेजी के 'Modern' से बना है जो स्वयं लैटिन भाषा के 'Modo' से बना है। 'Modo' का आशापण है 'प्रचलन' अर्थात् जो कुछ योग के अनुसार प्रचलित है। इसी शब्द के आधार पर आधुनिकता, आधुनिकतावाद एवं आधुनिकीकरण शब्द की व्युत्पत्ति हुई। अनेक प्रमुख सामाजिकविद्याओं जिनमें डेनियल टार्नर, इजेन्सटाट, लेब्स, एप्पर, कार्ल्डोर्फ एवं योगेन्द्र सिंह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, से आधुनिकीकरण ही व्याख्या है।

आधुनिकीकरण का अर्थ है, मनुष्य द्वारा अपने प्राचीन काल से प्रचलित मूल्यों, परम्पराओं एवं मान्यताओं के स्थान पर अनुभव मूल्यों, परम्पराओं एवं मान्यताओं को ग्रहण करना। आधुनिकीकरण एक नये अवधि के उत्पत्ति मानविक उपज की यह नूतन दशा है जिसमें जन समुदाय बन्दों एवं नवीन तकनीकी के प्रयोग के लिए तपर रहता है तथा नये दंग के सामाजिक समस्याओं की स्थापना करता है। आधुनिकीकरण का प्रारंभ मार्चम में यूरोपीय समाज से हुआ।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्वितीय महायुद्ध के पश्चात तीत्र हुई है। क्योंकि इस युद्ध के पश्चात एक-एक करके अनेक परतन्त्र देश स्वतंत्र एवं आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर होते गये। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया किसी एक दिशा या क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया नहीं करती बल्कि
यह एक सामाजिक एवं व्यापक प्रभाव है। इस प्रक्रिया मूल्यों से सीमाबद्ध नहीं है परन्तु इसका अर्थ गुणात्मक इच्छुक परिवर्तन से लिया जाता है। आज विश्व का सम्पूर्ण समाज आधुनिक होता जा रहा है। भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को दो वृत्तिकोणों से समझा जा सकता है। कुछ विद्वानों ने आधुनिकीकरण के लक्षण भारतीय परम्पराओं में माना है। अतः उन्होंने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को उपनिवेशवाद और बाहरी संस्कृतियों के सम्बन्ध के परिणाम को माना है। आधुनिकीकरण की व्यापक अनेक समाज वैज्ञानिकों ने उसकी विशेषताओं के आधार पर की है। इस समाज भी होरो विद्वान स्लुईस का विचार है कि आधुनिकीकरण की अवधारणा उन विशेषताओं को स्पष्ट करती है जिनका प्राचीन काल से आभास रहा है। इसके अन्तर्गत प्राचीन विचारों के स्थान पर नवीन विचारों को सापेक्ष रूप से मूल अवधारणाओं से जोड़ा जाता है। ३ जैसे-जैसे ज्ञान का विकास होता गया, समाज वैज्ञानिकों ने आधुनिकीकरण की अवधारणा को पिन्न-पिन्न अर्थों में प्रभुत किया। आधुनिकीकरण सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक संरचना भी रूपान्तरित होती है इसके अन्तर्गत योजनाबद्ध रूप से निश्चित दिशा में परिवर्तन के सन्दर्भ में विचार किया जाता है। आधुनिकीकरण का अवधारण अनेक आधार पर किया गया है।

इन्कलोडेज ² ने ब्रिटिश को आधार मानकर इनका अवधारण किया है। अन्य विद्वानों ने आधुनिकीकरण का विश्लेषण धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षिक आधार पर किया है। इसमें लांसर ² (1956), एल्सटड ² (1966), रिम्पोर ² (1965), लीबी ² (1966), आपटर ² (1965-68),

एन्डरसन (1966), श्री निवास10, सिंगर11 (1966), स्लोट्स और स्लोट्स12 (1969) आदि प्रमुख हैं। मिल्टन सिंगर13 ने आधुनिकीकरण की व्याख्या परम्परा के विरोध में की है। इसके अनुसार प्राचीन विकास, महोदयता और रचनात्मक परम्पराओं में आधुनिकता की प्रकृति में प्रगति का सोपान है। मिल्टन सिंगर14 की मान्यता है कि आधुनिकीकरण का विचार एक निरपेक्ष अवधारणा नहीं है। वरन् इसका प्रयोग सदैव परम्परा विरोधवाद के सापेक्ष रूप में किया जाता है। पूर्ण आधुनिकीकरण या पूर्ण परम्परावादी दृष्टिकोण केवल कठिना मात्र उपयोग है। अतः सिंगर ने आधुनिकता बनाम परम्परा को आधुनिकीकरण की अपेक्षा अधिक उपचार माना है।15 वह आश्वस्त थे कि परम्परा एवं आधुनिकता के मध्य विभाजन में चाहे वह प्रचलित पाश्चात्य भौतिकवाद प्रति प्राचीन आध्यात्मिक के रूप में हो अथवा परम्परागत प्रति आधुनिक समाजों के अधिक परिणाम वैज्ञानिक रूप में हो, उनके अनुसार परम्परा तथा आधुनिकता के मध्य सह अस्तित्व तथा आधुनिकीकरणा विद्यमान रखती है। अतः सिंगर16 के विचार में अधिकांश लोग दो प्रकार के समाज से जुड़े हैं, परम्परागत एवं आधुनिक समाज। वास्तव में अधिकांश लोग आधुनिकता का प्रयोग केवल व्याकरणात्मक कार्यों के सन्दर्भ में करते हैं। इसके विपरीत वे धार्मिक मूल्यों, पारंपरिक सम्बन्धों, वास्तविक व्यवहारों एवं अभिवृत्तियों आदि जीवन के अन्य श्रेणियों एवं कार्य-कलापों में तब तक परम्परावादी होते हैं, जब तक उनका कोई व्यक्तिगत हिंद अथवा पारंपरिक अंतर्दृष्टि की त्रासदी नहीं होता। उनके लिए कतिपय आधुनिक गुणों को स्वीकार करना सरल होता है फिर भी पूर्ण रूप से आधुनिकता के प्रभाव में आने में वर्षों लग जाता है।17

15. Ibid
17. Ibid
श्री निवास ने आधुनिकीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि “किसी परिचालन देश के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण किसी निवासी शिक्षित देश में होने वाले परिवर्तनों के लिए प्रचलित शब्द आधुनिकीकरण है।”

श्री निवास ने आधुनिक एवं परिचालकीकरण के अन्तर को स्वीकार करते हुए लिखा है कि आधुनिकीकरण से सम्बन्धित परिचालकीकरण शब्द नैतिक दृष्टि से तटस्थ है। इसमे सत्य असत् का आधार नहीं मिलता परन्तु आधुनिकीकरण में उत्कृष्टता का अर्थ समझित है।

‘परिचालकीकरण’ जिसे वह आधुनिकीकरण के पर्याय के रूप में प्रस्तुत करते हैं सदैव कालियाँ जैसे अन्य मूल्यों का समझनेवाला होता है, स्थूल रूप से समानतावादी मूल्य के रूप में अभिलक्षित किया जा सकता है। इसका तात्पर्य आर्थिक स्थिति, धर्म, आदि, लिंग आदि से निरपेक्ष समस्त मानव जाति का कल्याण है।

श्री निवास के अनुसार संस्कृति-विकास की अवधारणा प्रारम्भिक धीरे है। आज ब्राह्मण अधिकारिक परिचालकीकृत होते जा रहे हैं। ब्राह्मण जिन प्रथाओं का परिचालन कर रहे हैं

उन्हें जाति संस्करण में निम्न कोटि की जातियों अंगीकृत करती जा रही है। इस प्रकार निम्न जातियों ही संस्कृति-विकास की प्रक्रिया में हैं। जहाँ तक इन जातियों का समबन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है मानो संस्कृति-विकास की परमाणुर्व क्रमागत तैयारी है। इस प्रकार संस्कृति-विकास केवल निम्न

जातियों तक सीमित है तथा आधुनिकीकरण का समबन्ध केवल उच्च जातियों से है। उनके अनुसार निम्न जातियों द्वारा अंगीकृत समस्त व्यवहारों में ब्राह्मणों का ही अनुक्रमण है जिसे उन्होंने संस्कृति-विकास की संख्या दी है। संस्कृति-विकास की इस प्रारम्भिक तैयारी के अभाव में वे आधुनिक नहीं बन सकते।

नैतिक आधार पर उनका उपरेकत कथन न्यूज़ीलैंड पूर्ण है तथा आधुनिकीकरण की संतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत करने में असफल है। श्रीमती चंदन का मत है कि आधुनिकीकरण मात्र अनुक्रमण नहीं है,

बल्कि उससे कुछ और अधिक है। अनुक्रमण अथवा अनुक्रमण मूल्य अर्थ अथवा अन्यान्य अनुक्रमण है।

18. M.N. Srinivas, OP. cit.
19. Ibid, p. 48
20. M.N. Srinivas, Caste in Modern and other Essays, Bombay Asia publishing House, 1968, p-54
21. S.C. Dube, Contemporary India and its Modernization, Delhi, Vikas Publishing House, Delhi, 1974
बबबक आधुनिकीकरण का एक आधार है जिस पर वह अपनी विशालता प्रतिढ्यातिक करता है।
अनुकरण एवं आधुनिकीकरण में एक गुणात्मक अंतर है। आधुनिकीकरण का तत्परता केवल अधिक विकसित देशों के विद्युत कार्यपाल किरणों, तथापि अथवा संलक्षणों का पृष्ठीय अर्थन अथवा अंगीकरण नहीं है वरन् उक्त एक अधिक तरीकेदार क्रम में चलन करके अधिक, सांस्कृतिक प्रतिपादन के साथ सुसंगठित एकीकरण है। बिल्फ्रेड केन्टब्रेक का भी ऐसा ही मत है। उनके अनुसार विकसित देशों से उदार करने की तकनीकी आधुनिक होने की संभावित आकांक्षा प्रदर्शित कर सकती है परन्तु यह आधुनिकीकरण का मूलतः तत्व नहीं है। आधुनिकवाद जो आधुनिकीकरण प्रक्रिया का अर्थ है- एक मानसिक अभिवृत्ति है न कि कोई सिद्धांत पदार्थ जिसका क्रम-विक्रम किया जा सके। तथा उक्तों का एक बार प्राप्त करके आप विश्लेषित हो सकें तथा उसका निष्कर्ष उपयोग करें। आधुनिकवाद अंगीकरण नहीं वरन् करना एवं होना है। केवल होना भी नहीं अपनू जोते होना। एक प्रक्रिया एक विचारित्व, एक अनुक्रम, एक ग्राम्यकर्ता है।

पांथे 23 के अनुसार आधुनिकीकरण वह दशा है जिसमें यन्त्रों तथा प्रविधियों के उपयोग के लिए एक नयी पुस्त्कभूमि का निर्माण होता है और सामाजिक सम्बन्धों का एक नया प्रारूप बनता है। दूसरे के अनुसार, आधुनिकीकरण मूलतः एक प्रक्रिया है यह परम्परागत अथवा अर्थ परम्परगत व्यवहार से तकनीक तथा सम्बन्धित सामाजिक संरचना, मूल्य, अनुक्रम, प्रेरणाओं तथा मानकों के कार्यक्रम वालित आदर्शों तक संचालन है। 24 हल्पर्ने 25 ने लिखा है कि आधुनिकीकरण रूपान्तरण से सम्बन्धित है, इसके अतर्गत व्यक्ति द्वारा समाज के निर्माण में प्रयुक्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, धार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक आदि सभी दृष्टिकोणों का रूपान्तरण किया जाता है।

डेनियल लर्नर\textsuperscript{26} ने आधुनिकीकरण की व्याख्या अधिमान्यताओं, मूल्यों तथा जीवन के साथ मनोसांस्कृतिक अनुकूलन के रूप में किया है। उनके अनुसार मानसिक गतिशीलता, आधुनिकता का सबसे आधारभूत लक्षण है। मानसिक गतिशीलता में अपने पर्यावरण के नवीन स्वरूपों से लघुत सुस्पष्ट तदात्म्य स्थापित करने की क्षमता है।

लर्नर\textsuperscript{27} का मत है आधुनिकीकरण का विशिष्ट लक्षण नगरीकरण है। नगरीकरण से साक्षरता का विकास हुआ। साक्षरता में संचार माध्यमों द्वारा प्रभाव की प्रवृति होती है। संचार माध्यमों के प्रभाव अभिवृद्धि का अनुमानिक परिणाम आर्थिक सहभागिता (प्रति व्यक्ति आय) तथा राजनीतिक सहभागिता (मताधिकार) के रूप में प्रकट होती है। इस प्रकार व्यक्ति को नवीन मूल्यों की प्राप्ति होती है। स्पष्टतः लर्नर आधुनिकता को मानसिक स्थिति में एक ऐसे परिवर्तन के रूप में देखते हैं जिसमें विकास की ओर आगे होने तथा परिवर्तनों से सामंजस्य स्थापित करने की तत्परता का समावेश होता है। प्रमुख भारतीय समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह के अनुसार आधुनिकीकरण सर्वजनात्मक एवं सांस्कृतिक मूल्यो के मध्य एकीकरण की एक प्रक्रिया है। आधुनिकीकरण का विश्लेषण सर्वजनात्मक आधार पर भूमिका एवं भूमिकाओं के समुच्चय के रूप में तथा सांस्कृतिक आधार पर मूल्यों एवं आदर्शों के रूप किया जा सकता है। आधुनिकीकरण का विकास इसके भूमिका सम्बन्धी सर्वनामों में परिवर्तित आदर्शों के अन्तर्दृष्टि द्वारा होता है।\textsuperscript{28}

योगेन्द्र सिंह आधुनिकीकरण को ऐसे सांस्कृतिक प्रत्युत्तर के रूप में स्वीकार करते हैं जिनमें उन विशेषताओं का समावेश है जो प्राथमिक रूप से विश्वव्यापक एवं उद्विकासीय है। \textsuperscript{29} आपके अनुसार आधुनिकीकरण को सांस्कृतिक सर्वव्यापी जैसा कहा जा सकता है। आधुनिकीकरण का आशय केवल प्राथिक उत्तर से ही नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण, समकालीन

\textsuperscript{26} Denial Lerner : The Passing of Traditional Society : Modernising the middle cast glencoe III, the Free Press 1958.

\textsuperscript{27} Ibid, p. 49.

\textsuperscript{28} Yogendra Singh, Eassy on Modernization in India, Delhi, Manohar Book Service, 1976, p. 76.

\textsuperscript{29} Yogendra Singh, Modernization of Indian Tradition.
समस्याओं के लिए मानवीकी का अंतरिम आंतरिकरण एवं विज्ञान का दर्शनविद्वान दृष्टिकोण होना आवश्यक है। इस प्रकार उपरोक्त पारिभाषिक विशेषण से हम यह समझते हैं कि आधुनिकीकरण की अवधारणा मूलतः परम्परा की अवधारणा के विपरीत है। परम्परागत धारणाओं के स्थान पर आधुनिक एवं नवीन ज्ञान, विश्वास, मूल्य, नवीनता, यथार्थता एवं बौद्धिकता को महत्व प्रदान करके आर्थिक विकास करना ही आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषता है। किसी समाज के सदस्यों में जैसे-जैसे आर्थिक समृद्धि आती है वैसे-वैसे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उन्हें आधुनिकीकरण तथा आधुनिकीकृत बनने के नये अवसर उपलब्ध होते जाते हैं। जब समाज के सदस्यों की प्रति व्यक्ति आय का ग्राह करने उत्तराधिकार है तो वे व्यक्ति को अधिक शक्तिशाली, आधुनिक एवं अपनी सन्तानों के लिए भी अच्छी व बेहतर शिक्षा एवं सुख-सुनिधि के साधन जुटाने लगते हैं। आर्थिक व्यक्ति नगरों की ओर आकर्षित होता है। शिक्षा का विकास उनमें संचार एवं आवागमन के साधन के प्रति उनकी जागरूकता को बढ़ाता है। आर्थिक समृद्धि तथा नवीन भवनों का निर्माण, आर्थिक विकास समाज के उपयोग एवं उच्च जीवन स्तर की प्रेरणा देती है।

इन्क्लेस तथा समिधृतता के अनुसार आधुनिकीकरण एक जटिल बहुभागी तथा बहुआयामी प्रक्रिया है जो मलुम के विचारों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति की जटितता में अथवा क्रूर अभिव्यक्ति गहन-परिवर्तन, जीवन की समस्याओं, समाज तथा विश्व के प्रति उनकी समस्याओं के अभिव्यक्ति में परिवर्तन संदर्भ है। कार्य दोहर ने भी सामाजिक गतिशीलता को आधुनिकीकरण की व्याख्या में प्रमुख तत्त्व माना है। अपने सामाजिक गतिशीलता के विचार से आधुनिकीकरण के सामाजिक जनराक्टीय सूचकों को आसान रूप में प्रस्तुत किया है। दोहर ने सामाजिक गतिशीलता को एक ऐसी प्रक्रिया कहा जिसमें प्राचीन सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आत्मसमाप्ति के समूह समाप्त हो जाते हैं एवं दूर जाते हैं तथा सामान्य जन सामाजिकीकरण के नवीन प्रतिमाओं के प्रति सफल हो जाते हैं। अपने आधुनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के कुछ प्रमुख चूकों जैसे वर्तमान की काश्य मशीनरी, भवनों, उपभोक्ता वस्तुओं, संचार साधनों, निवास स्थान के परिवर्तन, नगरीकरण, क्रांतिगत व्यवसायों की अपेक्षा गैर-

कृषि जन-व्यवसायों को प्रभाव करना, शिक्षा के प्रति आकर्षण एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि आदि को औद्घोषण करने के रूप में विभेदित किया। इज़ेनस्टाउड31 ने अपनी पुस्तक ‘Modernization Protest and Change’ में आधुनिकीकरण की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि ‘प्रगति आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषता है। आधुनिकीकरण के द्वारा आर्थिक क्षेत्र में उच्च स्तर की तकनीकी वैज्ञानिक का विकास होता है। आधुनिक समाजों में कार्य एवं जीवन में भर्ती व्यापक रूप से उपलब्धि के आधार पर की जाती है, जबकि परम्परागत समाजों में संगठित पद्धति प्रमुख थी। राजनैतिक क्षेत्र में आधुनिकता, समाज के विस्तृत समूहों में सम्मिलित सत्ता के निर्देशक विचार से परिवर्ती में लिखा है जो उनमें समस्त व्यक्ति नागरिकों के पास पहुँचती है। आपके अनुसार समस्त आधुनिक सामाज कुछ स्तर तक प्रजातात्त्विक हैं। यह प्रगति विशेषकर संचार के माध्यमों के विस्तार से सम्बन्धित है।’

एम. मिचेल ने ‘Modernization and Social Structure’ में कहा है कि ‘आधुनिकीकरण तुलनात्मक प्रक्रियाओं का समूह एवं व्याख्यात्मक, आधुनिकीकरण, नगरीकरण एवं नौकरशाहीकरण से सम्मिलित परिवर्तन एवं इन प्रक्रियाओं का सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों से है।’32

डेविड एप्टर ने ‘The Policies of Modernization’ में लिखा है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया विश्व संस्कृति का विस्तार, प्रसार या फैलाव है जो उन्नत प्रविधि एवं विज्ञान की प्रभाव, जीवन के बारे में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण, सामाजिक समस्याओं के विषय में लोकार्थिक विचारधारा, समस्त जन सम्बन्धों के लिए समाज की प्रवृत्ति के आधार पर है एवं जिनका सम्बन्ध एक प्रकार के आधुनिक जीवन के लिए एक विकल्प के बचन से है।33

प्रो. मूरे ने Social Change में लिखा है कि “आधुनिकीकरण के अन्तर्गत एक परम्परागत अथवा पूर्ण आधुनिक संगठन उस प्रकार की औद्घोषित एवं उससे सम्बन्धित

31. S.N. Eisenstadt: Modernization, Protest and change.
32. M. Mitchell: Modernization and Social Structure
33. David E. Apter: The Policies of Modernization
सामाजिक संगठन के रूप में हो जाता है जो परिचयी दुनिया के विकसित, आर्थिक दृष्टि से समुदिशाली और राजनैतिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक स्तर राष्ट्रों में पायी जाती है।"  

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रो. मूर्त आधुनिकीकरण का सम्बन्ध आर्थिक विकास एवं आंदोलन का संबंध होता है। प्रो. मूर्त ने ही आधुनिकीकरण की विस्तृत विवरण करते हुए अपनी एक अन्य पुस्तक में लिखा है कि आधुनिकीकरण राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक हो सकता है। इसके अन्तर्गत प्रशासनिक संगठन, अर्थव्यवस्था, सामाजिक संचार, जन-स्वास्थ्य, शिक्षा में प्रसार, व्यावसायिक उन्नति, नगर परिवहन एवं शारीरिक संगठन की नवीन प्रगतिशीलियों को प्रभाव करना शामिल है।

गॉसफिल्ड 36 ने अपने शोध निबंध के अंतर्गत आधुनिकीकरण की व्याख्या सामाजिक परिवर्तन के ‘रेखायां’ सिद्धांत के रूप में किया है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है-- "परिस्थितियों समाज में स्थिरता का विचार ब्रम्मपूर्ण है। साधारणतः इसमें एक ही प्रकार की संरचना में दृढ़ता होती है। परम्परा एवं आधुनिकता के सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि उनमें संघर्ष हो तथा यह भी आवश्यक नहीं है कि आधुनिकीकरण परम्परा को निर्भर बना दें। परम्परा एवं आधुनिकता दोनों ही ऐसे आदर्शों तथा आन्दोलनों का आधार हैं जिसमें ध्रुवीय विरोधियाँ का आक्रमण में रूपान्तर हो जाता है परतु परम्परागत अव्यूहता परिवर्तन के अनुप्रूप अथवा प्रतिकूल दोनों प्रकार के आधार प्रस्तुत कर सकती है।

कोई भी समाज न तो पूर्णतया परम्परागत है न ही पूर्णतया गतिशील। स्थिरता एवं गतिशीलता की अवधारणा सांपेक्षिक। आधुनिकता को समझने के लिए परम्परा को भी जानना आवश्यक है। परम्परा के ज्ञान के अभाव में आधुनिकता को व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि जिन समाजों को

34. W. E. Moore : Social Change
35. W.E. Moore : The Impact of Industry
आज हम आधुनिक कहते हैं उन समाजों में भी कुछ परस्पराघं लोगों के व्यवहारों का निदेश देते हैं।

सारांश: व्यक्ति में आधुनिकीकरण के प्रतिफल के रूप में सामाजिक वर्ण विकास होता है। यह एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति परम्परागत जीवन पद्धति का परिवर्तन एक अपेक्षाकृत अधिक जटिल विकसित तथा तीव्र गति से परिवर्तनशील जीवन रीति के रूप में अनुभव करता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण अनेक कारकों के मध्य परस्परिक प्रभाव की प्रक्रिया है।

आधुनिकीकरण की परिभाषा

बैनडिक्स ने अपनी पुस्तक Tradition and Modernity Recognized में लिखा है, "आधुनिकीकरण से मेरा तात्पर्य उस तरह के सामाजिक परिवर्तन से है जो 1760 से 1831 के मध्य ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति तथा 1759 से 1794 के मध्य फ्रांस की राज्य क्रांति के बीच हुए।"

प्रो. बी.बी. शहीद का मत है, "आधुनिकीकरण आर्थिक प्रक्रिया ही मात्र नहीं है, अपेक्षा राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है। यह एक व्यापक विशेष जटिल प्रक्रिया है जो एक समाज विशेष के समूहां जीवन को व्याप्त करती है।"

डॉ. सिम्थ का मत है कि आधुनिक होने का अर्थ यह कदापि नहीं कि अन्य की अपेक्षा एक विशेष वातावरण में रहने जाता। सिम्थ के अनुसार, "मानव जीवन को क्या हो रहा है अर्थात् "क्या बनना चाहते हो" की ओर क्रांतिकारी रूपांतर सम्बन्धित करने की प्रक्रिया का नाम आधुनिकीकरण है, आधुनिकीकरण ध्येय नहीं वरन् एक प्रक्रिया है, अपनाने की नहीं बल्कि भाग लेने की वस्तु है।"

मैरियम जे. लेबी का मत है कि "आधुनिकीकरण क्रांति के जड़ों-स्रोतों और प्रयत्न के प्रभाव को बढ़ाने के लिए उपकरणों के प्रयोग पर आधारित है।"

डेनियल लार्नर ने आधुनिकीकरण को परिचय देने के रूप में स्वीकार किया और कहा कि

यह एक महत्वपूर्ण कथा रहता है, प्रगति की अपेक्षा बुद्धि की ओर झुकाव है और परिवर्तन के अनुरूप अपने को ढालने की तत्परता है।

भारतीय समाजशास्त्री डॉ. योगेन्द्र सिंह की मान्यता है कि आधुनिक होने का अर्थ 'फैशनेबल' होने से लिया जाता है। आधुनिकीकरण पर किसी एक जाति या संस्कृति समूह का आधिपत्य नहीं हो सकता। इस पर सम्पूर्ण मानव समाज का अधिकार होता है।

डॉ. योगेन्द्र सिंह के शब्दों में—“आधुनिकीकरण एक सांस्कृतिक प्रत्यय है जिसमें तार्किक अभिवृत्ति, सार्वभौमिक विचारधारा, परामुन्नूति, वैज्ञानिक समाज दृष्टि, मानवीयता तथा तकनीकी विकास आदि सम्बद्ध होते हैं।”

अपनी युगांध्र Modernity of Tradition में रूढ़िवाल्फ तथा रूडाल्फ ने लिखा है।

“वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों के विश्लेषण में आधुनिकीकरण का प्रयोग प्रायः परम्परा के विरोध के रूप में किया जाता है।”

लेपर के अनुसार “आधुनिकीकरण को प्रक्रिया अपने आप में मानवीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में धार्मिक उद्देश्यों को किया जाता है और धर्म निरपेक्षता की स्थिति प्रकाशित करती है। इस अर्थ में आधुनिकीकरण धर्म पर मानवता की विजय का प्रतीक है।”

एडिटा बजार्स के अनुसार “आधुनिकीकरण आधिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में विविध अंत:सम्बन्धित परिवर्तनों की एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से कम विकसित समाज, आधिक विकसित समाजों की विशेषताओं को प्राप्त कर लेते हैं।”

सी.डी.ब्लेक के अनुसार “आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें ऐतिहासिक रूप से समबद्ध संस्थाएं परिवर्तित होते हुए नवीन कार्यों को तीर्थता से अपनाती हैं जिससे व्यक्तियों के ज्ञान में वृद्धि होती है और जो वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि करती है।”

डॉ. श्याम चरण दूबे ने लिखा है कि "आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो परम्परागत समाज से प्रौद्योगिक स्तर पर आधारित समाज की ओर अग्रसर होती है।"

कृष्ण स्वामी लिखते हैं कि "परिवर्तनकरण ने संस्कृति की केवल ऊपरी सतह को तर्कित किया किन्तु आधुनिकीकरण अपनी तार्किकता को प्रत्येक रूप से प्रमाणित करके न केवल जनसमाज को आकर्षित करता है बल्कि सार्वजनिक संस्थाओं से लेकर वैश्विक इच्छाएं तक इसके प्रभावी क्षेत्रों में मौन समर्पण कर देता है।"

समाजशास्त्रीय भाषा में यह कहा जा सकता है कि "आधुनिकीकरण वह दशा है जिसमें प्रौद्योगिकी तथा प्रौद्योगिकी का उपयोग निरंतर बढ़ता जाता है और तदनुसार सामाजिक सम्पन्नता तथा समाजभित्र संस्कारांग लगातार परिवर्तित होती रहती है।"

आधुनिकीकरण के लक्षण

आधुनिकीकरण में केंद्रित रूपान्तरित विषयवस्तुओं से मुक्त नवीन व्यवहारिक व्यवस्था की उत्पत्ति निहित होती है। नवीन व्यवहारिक प्रतीक्षान नवीन अभियाचारियों के अनुकूल नहीं होते। अतः नये संवृत्त में पुनर्समन्वय की आवश्यकता होती है। इस व्यवस्था में केंद्रित मूल्यों में परिवर्तन की पूर्व कल्पना होती है। मूल्य परिवर्तन के अभाव में नवपरिवर्तनकारी नीतिशास्त्र का निर्माण नहीं हो सकता। मूल्य परिवर्तन केवल इसी कारण आवश्यक नहीं है अथवा आधुनिकीकरण के लिए अपरिहार्य समझौते जाने वाले संस्थागत पुनर्मन्वय हेतु भी महत्त्वपूर्ण है। नगरीकरण, आयोगीकरण, शिल्प, अर्थशास्त्रीय संस्कार, साक्ष्यता, तर्कसंगत तथा वैज्ञानिक वृट्तिकोण आदि आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण के लक्षण हैं।

नगरीकरण आधुनिकीकरण का प्रारम्भिक तत्त्व है। नगरीय जीवन में परिवर्तनकरण, आयोगीकरण, राजनीतिकरण, लोकिकीकरण, एवं जनतन्त्रिकरण की आधुनिक प्रक्रियाओं का विकास तीव्रता से होता है, जिसके परिणामस्वरूप परम्परागत दृष्टिकोण समाप्त होने लगते हैं और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया क्रियाशील होने लगती है। परिवर्तन, जाति, धर्म तथा शिक्षा, सरकार, प्रथाएं, रीतियाँ आदि सामाजिक संस्थाएं नगरीय जीवन से प्रभावित होकर आधुनिकीकृत होने लगती हैं। अतः नगरीकरण
आधुनिकीकरण की प्रथम महत्त्वपूर्ण विशेषता कही जाती है।

औद्योगीकरण आधुनिकीकरण की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। आधुनिक समाजों को औद्योगिक समाज कहा जाता है। औद्योगीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें औद्योगिकी के ऊपर आधारित मशीनी पद्धतियों द्वारा अभिकारित माध्यम में वस्तुओं का निर्माण करके बाजारों का विस्तार करके औद्योगीकरण, आर्थिक समृद्धि, नवीन आसामियों एवं विलासितापूर्ण वस्तुओं की जननी हैं औद्योगीकरण एवं इन्हीं से जुड़ा है आधुनिकीकरण।

साक्षरता भी आधुनिकीकरण की एक अनिवार्य विशेषता है। नगरीय उपयोगों के उपयोग, नवीन विचारों, मूर्खों के प्रचार-प्रसार, नवीन आविष्कारों एवं उनकी उपयोगिता तथा लाभों को जनसामान्य तक पहुँचाने की क्रिया की भूमिका सर्वभौम नहीं है। किसी समाज के जब अधिकांश व्यक्ति साक्षर हो जाते हैं तो वे अपने समस्त प्रकार की नवीनताओं का प्रसार करते रहते हैं तथा नवीन इच्छाओं की पूर्ति के साधनों का विकास करते हैं।

मध्य सहभागिता इसका उल्लेख 'लाल्ज' ने किया है। लाल्ज ने सहगामी समाज को ही आधुनिक समाज की मुख्य विशेषता बताया है। शहरों की ओर पलायन के कारण जब लोगों को नये अनुभव होते हैं, साक्षरता के कारण जब वे नयी कुशलता प्राप्त करते हैं, तो उनमें आत्मसत्य पैदा होता है जिससे उपयुक्त कुशलताओं का संगठन होता है। ऐसी स्थिति में सहभागिता प्रकट होती है इससे आधुनिकीकरण में समिलित आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिवर्तन सम्मिलन होते हैं।

अन्य अनेक वैज्ञानिकों ने भी आधुनिकीकरण की विशेषताओं में मध्य-सहभागिता को आधुनिकीकरण की एक मुख्य विशेषता माना है।

आधुनिकीकरण की एक अन्य विशेषता विज्ञान, वैज्ञानिक भावना एवं औद्योगिकी के विकास तथा उसे स्वीकार करने की भावना है। अनेक प्रकार के तथ्य जटिलतम रूपों में, वैज्ञानिक उपकरण आदि किसी भी समाज में विज्ञान एवं औद्योगिकी के विकास से ही निर्मित होते हैं। सड़कें, पुलें, भवन निर्माण, विज्ञान, कार्यालयों का निर्माण, पात्रायत एवं संचार के साधनों में वृद्धि, कृषि में विकास आदि समस्त क्षेत्रों में विज्ञान एवं औद्योगिकी का विस्तार किया जाता है। इन्हीं के परिणामस्वरूप बड़े
पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

आधुनिकीकरण की एक और महत्वपूर्ण विशेषता आर्थिक समृद्धि है। किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीय आय तब तक नहीं बढ़ सकती, जब तक उस देश में आधुनिकीकरण का तीत्र विकास न हो। राष्ट्रीय आय में वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से जुड़ी है। प्रति व्यक्ति विकास में वृद्धि होने से ही आधुनिकीकरण एवं आधुनिक व नवीन मूल्यों की ओर आकर्षित होने लगता है। आर्थिक समृद्धि ही आधुनिकीकरण की रीढ़ है, क्योंकि बिना आर्थिक समृद्धि के आधुनिकीकरण की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप परम्परागत मूल्य कमजोर हो जाते हैं एवं नवीन मूल्यों का विकास होता है। परम्परागत मूल्यों की अपेक्षा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के द्वारा समाज, स्वतंत्रता नवीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना, कल्पनाओं व उत्तरदायित्वों के प्रति निश्चित आदि नवीन सामाजिक मूल्यों का सृजनात्मक होता है। मानसिक एवं सामाजिक गतिशीलता के कारण परम्परागत बन्धन धीरे-पड़ी लगते हैं एवं वे सामाजिक समृद्धि के नवीन प्रतिमाओं को ग्रहण करके आधुनिकीकृत बनते चले जाते हैं। आधुनिकीकृत होने की यही प्रक्रिया आधुनिकीकरण है।

इस प्रकार व्यवसायों का अधिकांश कुशल एवं विशेषतः कुशल होना, प्रदर्शन के स्थान पर अर्जित पदों का महत्व, राजनैतिक साझेदारी या मतदान व्यवसाय में वृद्धि, संचार एवं आवागमन के साथ तीन विकास द्वारा उपयोग आदि अनेक विशेषताएं आधुनिकीकरण की अवधारणा से जुड़ी है।

आधुनिकता का आदर्श पाश्चात्य देश एवं उनमें होने वाले परिवर्तन ही रहे हैं। इस समय में बेंडिक्स10 ने लिखा है “आधुनिकीकरण से तात्पर्य उस तरह के परिवर्तन से है जो 1760-1830 से इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति तथा 1789 से 1794 में फ्रांस की राजनैतिक क्रांति के समसमयान्तराल उत्पत्ति हुई।”

वर्तमान प्रजातन्त्र शिक्षा प्रणाली और औद्योगिक क्रांति का प्रारंभ परिचय देशों में ही हुआ।

---

है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रारंभ में आधुनिकीकरण के प्रारूप परिपक्व देश ही रहे हैं। चाहे रूस, चीन, जापान या अन्य देश भी हो, वह भी अब आधुनिकीकरण के आदर्श के रूप में है। रुदाल्फ एंड रुदाल्फसे 41 ने भी इस बात की पुष्टि की है।

लर्नर (1962-1963) 42 और कोलमैन (1960) 43, मैककलेंड (1953) 44, इईविलाइडसेवा (1963) 45 और मूरे (1963) 46 ने आधुनिकीकरण की व्याख्या बौद्धिक स्तर पर किया है। लर्नर ने आधुनिकीकरण का परिपक्व प्रतिमान स्वीकार किया है। वे आधुनिकीकरण में निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख करते हैं-

1. बढ़ता हुआ नगरीकरण
2. बढ़ती हुई साक्षरता
3. बढ़ती हुई साक्षरता विभिन्न साधनों जैसे- समाचार-पत्र, पुस्तकें, रेडियो आदि के प्रयोग द्वारा हिक्षित लोगों के अर्थपूर्ण विचार विनिमय सहभागिता को बढ़ाती है।
4. इन सभी से मनुष्य की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, जो प्रति-व्यक्ति आय को बढ़ाने में योगदान देता है।
5. यह राजनैतिक जीवन की विशेषताओं को उल्टत करने में सहायता देती है।

लर्नर 47 उपर्युक्त विशेषताओं को शक्ति, निपुणता तथा तार्किकता के रूप में व्यक्त करते हैं। वे

41. Rudolph and Rudolph – The Modernity of Tradition
42. Lerner Denial, op cit.
47. D. Lerner, op. cit.
आधुनिकता को प्रमुखत कस्तिय ऋषि के रूप में स्वीकार करते हैं। परालुभूति भी आधुनिकता का प्रमुख तच है, जिसमें अन्य लोगों के चुमिदुम में भाग लेने और संकट के समय उनकी सहायता देने की प्रत्यूति बढ़ती है।

दूसरे ने आधुनिकीकरण को एक आवश्यक प्रक्रिया माना है, जिसमें परम्परागत एवं अर्धपरम्परागत स्वरूप कुछ वास्तविक प्रकार की प्राथमिकता तथा सामाजिक संरचना के स्वरूप में परिवर्तन होती है। दूसरे ने आधुनिकता के कुछ लक्षणों का उल्लेख किया है—

1. परालुभूति, 2. गतिशीलता, 3. उच्च सहभागिता, 4. अभिरूचि की स्पष्टता, 5. हितों का एकत्रीकरण, 6. संस्थागत राजनैतिक प्रतिपक्ष, 7. तात्कालिक साधन एवं साधन का पूर्ण आकलन, 8. उपलब्धियों का अनुकूलन, 9. संस्कृति कार्य, बचत तथा जोखिम के प्रति नवीन अभिवृत्ति, 10. सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक अनुशासन, 11. लविक एवं लघुकालीन तुष्टि की दीर्घकालीन उच्चतर तुष्टि के लिए स्थिर करने की क्षमता।

राबर्ट सी बुड (समन्वय की क्षमता) का मत है आधुनिकीकरण व्यक्ति को इस योग्य बना देती है कि व्यक्ति अपने जीवन में न केवल एक अथवादों अवसरों पर वर्तमान प्रश्न परिवर्तित परिस्थितियों से समन्वय स्थापित कर सके। समन्वय की इस प्रक्रिया के लिए सामाजिक एवं राजनैतिक संस्करणों, प्रक्रियाओं, व्यवहार पद्धति एवं आचरण के नवीन मानकों की आवश्यकता होती है जो व्यक्तिगत जीवन तथा जीवनवृत्ति में कोई पूर्व विपरीत उपन्यास किये बिना सत्ता नवीनीकरण का अवसर प्रदान करते हैं। आधुनिक जीवन की यथार्थ समस्ता गुणावशकता तथा परिणाम के मिश्रण की क्षमता है, नवीन जन-समुदाय के प्रति व्यवहार कौशल, नवीन जटिल सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवहार व्यवस्था का व्यक्ति के दृष्टिकोण से अर्थपूर्ण संचालन अन्य समस्याओं हैं। ऑप्टर० ने इसके लिए तीन तत्त्वों का निरूपण किया है जिसमें एक सामाजिक व्यवस्था में बिना विघटन के सतत्

48. S.C. Dube, op. cit.
नवीन परिवर्तन घटित होते हैं (इसके मूलभूत मान्यताओं में परिवर्तन की स्वीकार्यता सशक्तिकर्ष है) विभेदीकृत, सुसम्भ सामाजिक सरकार तथा एक तकनीकी आंशिक से विकसित संसार में जीवनयापन हेतु आवश्यक कौशल तथा ज्ञान प्राप्त करने वाला सामाजिक रूप होगा।

पारसन्स 50 ने अवलोकित किया है कि धर्म दर्शन तथा पारिवारिक जीवन के प्रति प्रतिबद्धता से निर्माता अत्य विकसित राष्ट्रों में राजनीतिक स्वतंत्रता तथा आर्थिक विकास के प्रति प्रबल प्रतिबद्धता की प्रवृत्ति होती है। उनका तर्क है कि राजनीतिक सत्ता आंधोगीकरण में सहायता प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण अभिकरण है। यह वर्ग संरचना से सम्बद्ध है। उच्च वर्ग राजनीतिक शक्ति धारण करता है। इसके अभाव में स्वतंत्र विकसित वर्ग का विरोध कर सकते हैं। अतः, बुद्धिजीवी वर्ग की भूमिका वर्ग की भूमिका में महत्व धारण कर लेती है। इसके अंतिम राष्ट्रीय आवश्यकता आधुनिकीकरण तथा कार्यकुशलता में उन्नति की सहायता है। वास्तव में व्यापक शिक्षा अन्यथा महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यह प्रत्येक रूप से वृत्तिमूलक है। अतः, रीतिवादक अवस्था व्यथा प्रसार की ओर अभिमुख होगी।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया

विश्व के लगभग सभी विकसित देश आर्थिक विकास की ओर अग्रसर हैं। वहीं दूसरी ओर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया भी चिनाशील है। आधुनिकीकरण का प्रारंभ पश्चिम में यूरोपीय समाज से हुआ। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्वितीय महायुद्ध के बाद तीव्र हो गयी जो देश स्वतंत्र हुए वे आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हुए। यह सत्य है किंतु विभिन्न देशों के क्षेत्र में आधुनिकीकरण की गति भिन्न-भिन्न होती है। इसका कारण यह है कि भिन्न वर्गों की विशेषताएँ भिन्न-भिन्न हैं।

प्रारंभ में आधुनिकीकरण के आदर्श प्राप्त रूप, बीतन, जापान या अन्य देशों दे से। भारत में जिन मूलभूत के अनुकरण किया जा रहा है वे पश्चिम की किसी देश की न होकर मुख्यतः रूस, जापान और अमेरिका आदि देशों से प्रभावित हैं। पश्चिमी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी वर्ग के द्वारा

---

भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन करके यहाँ की प्राचीन परम्पराओं को बूढ़ा निकाला गया। यही वर्ग भारत में आधुनिकीकरण लाने में प्रकट हो रहा है इस वर्ग के विकास का तथा भारतीय इतिहास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका का बी.बी. मिश्र तथा ए.आर. देसाई51 ने अपनी पुस्तक में अच्छा चित्रण किया है।

हमारे देश में आधुनिकीकरण के अनेक आदर्श परिचालकों द्वारा लिये गये हैं, किन्तु इसका स्वरूप अध्यात्मिकता: देशी है, व्यक्ति उनके देश में विज्ञान मान दशाओं के प्रकाश में परिवर्तनशील एवं परिवर्तनशील कर लिया गया है।

मिल्टन सिंगर52 ने उन परिवर्तनों की चर्चा की जो भारतीय संस्कारों एवं विश्वासों में तो आ रहे हैं किन्तु आधुनिकीकरण में बाधक नहीं है।

पी.एच. प्रभु53 ने अपने अध्ययन में कहा था कि जो लोग गांव से आकर शहर में बस गये हैं उनमें से अधिकांश: सामान्य: अपने रोजगार की स्थिति से या तो संतुष्ट हैं अथवा मिलाओ या फैक्ट्रीयों के काम से अपना अनुकूलन कर रहे हैं। चार्ल्स मेयर, डी. मेसिन, लेम्बर्ड तथा बिल्बर्ड मूर ने भी अपने अध्ययन के यही निष्कर्ष निकाले हैं।

औद्योगिककरण तथा नगरीकरण की तीन प्रक्रिया ने एक तरफ सार्वजनिक प्रशासन एवं विकास रोजगार का विकास किया तो दूसरी तरफ उद्योगों में सार्वजनिक क्षेत्र का। इसके परिणामस्वरूप देश के लाखों लोगों को रोजगार मिला। सभी प्रदेशों तथा सभी जाति समुदायों के व्यक्तियों के एक साथ काम करने से सामाजिक सम्बन्धों तथा जाति कठोरता में शिखरता आयी। संयुक्त परिवार टूटने लगा तथा एकाधी जातियों की संख्या में वृद्धि हुई तथा परम्परागत धार्मिक संस्कारों की महत्ता कम हो गयी। आज परम्परागत संस्कृति समस्त ध्वस्त धार्मिक संस्कारों के अलावा धीरे-धीरे विकसित हो रही है। अब किसी भी जाति का व्यक्ति किन्हीं भी सामाजिक, आर्थिक, रौशनीक...

51. A.R. Desai, Social Background of Indian Nationalism.
तथा राजनीतिक अवसरों का लाभ उठाकर अपनी स्थिति में मनचाहा परिवर्तन ला सकता है।

आज मानवीय विचारधारा में बीचकाटा को जितना महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है उतना महत्व मूल्यों भवनाओं एवं परम्पराओं को नहीं। ध्याति जगत में होने वाले परिवर्तन भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सहयोग हैं। इसमें सदैव नहीं कि औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, लौकिकीकरण व आधुनिकीकरण की प्रक्रियाएँ, भारतीय जीवन के दृष्टिकोण में पहलू में प्रवेश कर गयी हैं लेकिन परम्परागत सांस्कृतिक प्रतिमाओं में बड़ी धीरी गति से परिवर्तन आये हैं तथा अनेक खेलों में इन परिवर्तनों का कही विरोध किया गया है।

सामान्यतया समाज वैज्ञानिक यही मानते हैं कि भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत अंग्रेजों के शासन के समय से शुरू हुई है। दूसरे शब्दों में, आधुनिकीकरण का प्रमुख आधार भारत में पश्चिमीकरण (Westernization) की प्रक्रिया रही है।

भारत में अनेक आधुनिक कारकों के परिणामस्वरूप संरचनात्मक तथा संस्थात्मक परिवर्तन आये हैं किन्तु भारत का आधुनिकीकरण हो रहा है अधिकतर नहीं। यदि हम इस बात पर विचार करते हैं तो हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि भारत के आधुनिकीकरण की कितना प्रभाव है, दूसरे शब्दों में आधुनिकीकरण का प्रभाव कितना है।

भारतीय आधुनिक लोगों के स्वतंत्र भावनाओं के कार्यालयों पर असल कर रहे हैं। अब लोग यह सोचने लगे हैं कि बड़ा परिवार से ज्यादा महत्त्वपूर्ण एक बड़ा और छोटा परिवार बनाना है। परिवार के संग्रहात्मक पहलू का अस्तित्व समाप्त हुआ है। उसमें गुणधर्म सुधार के लिए वे अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा ग्रहण करने के लिए मेरीत कर रहे हैं। सुखी-सम्पत्ति परिवार के लोग तो अपने बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा के लिए शहर भेज रहे हैं। खेती-बाजी के कामों को छोड़कर सरकारी और नौकरियों की तलाश में लोग गाँव से शहर को आना पसंद कर रहे हैं।

आधुनिक लोग कृषि के क्षेत्र में भी नये-नये प्रयोग कर रहे हैं। उतम किस्म के बीज एवं खाद्य का प्रयोग काफी तेजी से हो रहा है। खेती में नवीन कृषि-प्रौद्योगिकी का भी प्रयोग किया जाने लगा है।
भारत के अधिकांश हिस्सों में कृषि के क्षेत्र में यथार्थकरण हुआ है। कृषि का विकास होने से गाँव में अब पक्के मकान दिखाई पड़ने लगे हैं।

विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक दूसरी घटी है। चूंकि-चूंकि की भावना में कमी आयी है। धार्मिक उत्सवों, शादी-विवाह एवं पूजा-पाठ के अवसरों पर विभिन्न जाति के लोग साथ-साथ बैठने लगे हैं। जमींदारों और जागीरदारों ने साल के नाम एवं खास शिशुओं के लिए एक दिना बैठने लगे हैं। जब वे साल खाने के लिए आते थे, तब उनके पास साथ खाने के लिए काफी विवाद उठता है। जब वे पास नहीं थे, तब उन्हें बच्चे उच्चांश शिक्षा प्राप्त कर बड़े सरकारी और गैर-सरकारी पदों पर पहुंचने का मौका मिलता है। जब जमींदारों एवं जागीरदारों का प्रभाव बिल्कुल नष्ट हो गया है। संयुक्त परिवार का काफी विवाद उठता है। गाँव में मूल परिवारों की संख्या बढ़ने लगी है। आधुनिकीकरण के प्रभाव में गाँव में सामाजिक भावना का प्रभाव उजागर हो गया है। व्यक्तिगत स्वार्थ काफी दूर से आये हैं। आधुनिकीकरण के प्रभाव में गाँव में सामाजिक भावना का प्रभाव उजागर हो गया है। जातीय पंचायतों की महत्ता की प्राप्ति सामाजिक समाज में कमी हुई है। लोग न्याय के परम्परागत तरीकों में विश्वास कम करने लगे हैं। न्याय पाने के लिए अब अदालतों की शरण लेने लगे हैं।

आधुनिकीकरण के प्रभाव में गाँव में सामाजिक भावना का प्रभाव उजागर हो गया है। संचार एवं यातायात के लिए गाँव में विकास के चलते गांव में रहने लगे हैं। आधुनिकीकरण के प्रभाव में गाँव में सामाजिक भावना का प्रभाव उजागर हो गया है। जातीय पंचायतों की महत्ता की प्राप्ति सामाजिक समाज में कमी हुई है। लोग न्याय के परम्परागत तरीकों में विश्वास कम करने लगे हैं। न्याय पाने के लिए अब अदालतों की शरण लेने लगे हैं।
में भी विश्वास कम होने लगा है। भार्य की जगह मेहनत में विश्वास बढ़ा है। पर सही है कि इस क्षेत्र में कोई भारी परिवर्तन नहीं आया है, पर जितना भी परिवर्तन आया है वह काफी संतोषप्रद है। अभी भी गाँव में अशिक्षा एवं गरीबी की भारी समस्या है। लोग स्वभावतः काफी धार्मिक और अन्यतंत्रवासी हैं। पर, यह बात विशेषकर अशिक्षित या बोड़े शिक्षित व्ययावहार एवं घर के अन्दर रहने वाली महिलाओं के साथ लागू होती है। जहाँ तक भारत में आधुनिकीकरण की बात है, तो हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि भारत में आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया स्वनिर्धारित दिशा की ओर है अथवा किस पूर्वस्तितित लक्ष्य की ओर। इस बात को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान यह समझते हैं कि हमने अधिकांशतः पूर्वीवादी आदर्शों को अपना लिया है और उसी दशा में हम अपनी अर्थव्यवस्था को विकसित कर रहे हैं और दूसरे विद्वान मध्यवादी दृष्टिकोण के आधार पर परिवर्तन पाते हैं। भारत में अपनी परम्पराओं भी हैं और परम्पराओं की जड़ें बहुत गहरी हैं। परिवर्तन के पश्चात् भी भारत के प्रथम क्रांती में इन परम्पराओं के दर्शन होते हैं, जो जीवन की बदली हुई परिस्थितियों के संदर्भ में एक नया रूप लेना चाहती है। कुछ विद्वानों ने भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के स्थान पर यह कहा उचित माना है कि भारतीय समाज विकास की ओर उम्मीद है जिसमें परम्पराओं को जड़ से उखाड़ फेंका नहीं गया है बल्कि नवीन आदर्शों एवं मूल्यों का पुट देकर उसको एक नयीन स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

आधुनिकीकरण की अवधारणा का समबन्ध परम्परा एवं आधुनिकता से है। अनेक समाजशास्त्रीयों ने परम्परा और आधुनिकता के मध्य चलने वाली अनुभवक्रिया का अध्ययन आवश्यक माना है।

समकालीन भारत में एक और कुछ धारणाएं परम्पराओं के रूप में विद्वान्मूर्त हैं और इसलिए बहुत से व्यक्ति परम्परागत मूल्यों को बनाये रखने के पक्ष में है दूसरी ओर दुनिया के अन्य प्रगतिशील देशों की तरह भारत में भी आधुनिकता की तहर उत्पत्त हुई है।

सारांश: आधुनिकीकरण एक जटिल प्रक्रिया है जो आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक एवं धार्मिक परिवर्तनों से समबन्धित है। इन परिवर्तनों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास, औद्योगिकीकरण, राजनीतिक चेतना में वृद्धि, प्रौद्योगिकी विकास, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, शिक्षा का प्रसार, जड़ शक्ति का मानव हित में उपयोग, अल्पसंख्यक प्रति त्याग बढ़ती हुई सट्टिया, परिवर्तन एवं
संचार के विकास में वृद्धि, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य में सुधार तथा नवीन प्रविधियों का उपयोग आदि तत्व आते हैं जो आधुनिकीकरण को स्पष्ट करते हैं।

भारत में आधुनिकीकरण

डॉ. एस.सी. दूबे के विचार

दूबे का मत है कि भारत में परम्परा और आधुनिकता विरोधाभास के रूप में मौजूद हैं। हमने विकास की योजनाएँ बनाई हैं और परम्पराएँ उनमें बाधक सिद्ध हुई हैं। जातीयता एवं सामाजिकता ने राष्ट्रीय वृद्धिकोण में रोड़ा पैदा किया है। धर्म निरपेक्षता के मार्ग में पवित्रता और अपवित्रता की प्राचीन धारणा बाधक रही है। विवेक के विकास में कर्म और धार्मिक संकट तथा कर्मकाण्ड बाधक है। प्रदर्शन और अर्जित पदों का तालमेल नहीं बैठ पाया है। परम्परा प्रदर्शन पदों को चाहती है तो आधुनिकता अर्जित पदों की पुष्टि करती है। आधुनिकता तदर्शना चाहती है तो परम्परा भावात्मकता।

दूबे ने भारत के आधुनिकीकरण में कई बाधाओं का भी उल्लेख किया है। आज का भारत परम्परा और आधुनिकता की दुविधा में फंस गया है। उसके सामने एक गड्ढा है कि किस सीमा तक परम्परा को छोड़ें एवं किस सीमा तक आधुनिकता को अपनायें। आज भारत के लोगों में अतीत का आकर्षण है तो दूसरी तरफ प्रगति की अनिवार्यता। बदले हुए परिवेश में लोग बहुत कुछ अपने-आपको अपुरुषता समझते हैं, दूसरी तरफ आलोचकों के नये दिक्षित को छूटा चाहते हैं। ऐसा लगता है सम्पूर्ण भारतीय गाँव परम्परा और आधुनिकता के बीच सहमा खड़ा है।

संकेत में हम यही कह सकते हैं कि नयी शिक्षा-प्रणाली, नयी अर्थव्यवस्था, कानून एवं प्रशासनिक व्यवस्था, सामाजिक विकास योजना, नगरीकरण, उद्योगीकरण, यातायात एवं संचार के नये-नये साधनों, प्रजातात्मक चुनाव पद्धति इत्यादि ने उपर्युक्त परिवर्तनों को लाने में अहम भूमिका निभायी है।

डॉ. योगेश अटल के विचार

डॉ. अटल की मान्यता है कि भारत में परम्परा और आधुनिकता साथ-साथ चल रही है। वे
इसे परिवारों के उदाहरणों द्वारा इस प्रकार स्पष्ट करते हैं कि नयी शिक्षा और नये व्यवसाय के कारण लोग शहरों में आकर रहने लगते हैं। साथ ही उनकी परिवार व्यवस्था में भी परिवर्तन आते हैं। स्थानीय दूरी ने परिवारिक दूरी अधिक नहीं बढ़ायी है और सदस्यगण विवाह, त्योहार, उत्सव, जन्म-मृत्यु के अवसर पर मिलते हैं।

करों ने परिवार के बाँचे को बदला है, आयकर के कारण दुकान के खते अलग-अलग सदस्यों के नाम चलते हैं। बाकी और भूमि का बंटवारा कर देते हैं। घर और कार्यालय की परिस्थितियां भिन्न हैं। आफिस से लौटकर नयी पोशाक के साथ ही आधुनिकता को भी खरीदी पर टॉग देते हैं और धौती पहनने को भोजन करते हैं।

इस बात का उल्लेख ‘आन्द्रेजे’ ने अपनी पुस्तक ‘Caste, Class and Power’ में भी किया है। सिवियां घर में ‘परम्परागत’ हैं तो दूसरी ओर आधुनिक प्रसाधन जैसे गैस का चुंबक, प्रेशर कूकर का प्रयोग, चप्पल पहने खड़े-खड़े खाना बनाना, पार्टी एवं होटल में जाना, सिवियां द्वारा नौकरी करना अंग्रेजी भाषा का प्रयोग तथा प्रेम विवाह की आरंभिक आदि परम्परा और आधुनिकता का मिश्रित रूप प्रकट करते हैं। आधुनिकता का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों के परिवारों में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

रुडोल्फ एवं रुडोल्फ के विचार

रुडोल्फ एवं रुडोल्फ का कहना है कि भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की नींव अंग्रेजों ने रखीं। भारत को नयी अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक एकता भी उन्होंने दी। भारत में नयी शिक्षित वर्ग को जन्म देने का श्रेय प्रेस एवं नयी शिक्षा प्रणाली को है। नयी प्रविधियों, सिंचाई के साधनों एवं यातायात के साधनों से कृषि में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। सड़कों के विस्तार ने गाँव की जगह एवं पुष्करण को समाप्त कर दिया। रेल यातायात व्यवस्था के उद्योगों का विस्तार किया जिससे जाति व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन आये, फलस्वरूप एक ओर जाति ने ग्रामीण व्यवस्था को बनाने रखा तो दूसरी तरफ प्रजातन्त्र को भी। भारत में जाति के समबंध में तीन रूप देखने को मिलते हैं।

1. उद्ग्र गतिशीलता

इसमें उच्च जाति और प्रभावशाली लोग निम्न जातियों का सहारा परम्परागत वफादारी व
अर्थव्यवस्था के नाम पर लेते हैं।

2. **क्षेत्रिज गतिशीलता**

इसके अन्तर्गत प्रत्येक जाति ने अपने जातीय समंजस बनाये हैं और अपने सदस्यों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हितों को प्रोत्साहन दिया है। नये जातीय संगठनों का नेतृत्व नवीन एवं नवीनिक्त पीढ़ी के हाथ में है जो जनतात्मक विचारों से आंदोलन और जिन में परम्परागत भी आधुनिक विशेषताओं का सम्मिलण है।

3. **विभेदमूलक गतिशीलता**

के अन्तर्गत राजनीतिक दल प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में बहुमत पाने के लिए मतदाताओं से प्रार्थना करते हैं। इसके लिए वे जाति का सहारा भी लेते हैं। उम्मीदवारों का चुनाव करते समय राजनीतिक बल क्षेत्र की जातीय स्थिति को भी ध्यान में रखते हैं।

रोडल्फ ने भारत में कानून एवं न्याय-न्यायव्यवस्था के आधुनिकीकरण का भी उल्लेख किया है। कानून का शासन (Rule of Law) एवं वर्तमान न्याय व्यवस्था भारत को अंग्रेजों की एक अच्छी देन है। इसके पहले देर में शासन भिन्न-भिन्न प्रथाएं एवं सामाजिक इच्छा से चलता था। अंग्रेजों द्वारा ही सम्पूर्ण भारत में एक ही कानून एवं न्याय-न्यायव्यवस्था का प्रशासन कायम हुआ। ब्रिटिश शासनकाल में ही बाल-विद्या एवं विद्या पुनर्विद्या, स्वीकृति अधिकार, उत्तराधिकार एवं सती प्रथा निरोधक अधिनियम बने, जिसने परम्परागत भारतीय समाज में आधुनिकता का मार्ग प्रवर्तित किया।

भारत में आधुनिकता का आदर्श परिचय देश ही रहे हैं। फिर भी हमने रूप का समाजजात आदर्श भी अपनाये हैं। धर्म, संस्कृति, संस्कार एवं विश्वासों में हम उन्हें परिवर्तन देख सकते हैं जिन्हें की उद्योगों एवं ग्रामीण जीवन में। ये परिवर्तन आधुनिकता में अभाव नहीं हुए हैं। आधुनिकता के क्षेत्र में भारत कभी भी किसी भी परिचय का आदर्श कार्बन-कार्बन नहीं बन सकता है तथा नवीन परिवर्तनों को अपनाये हुए। भी अपनी पुर्वकाल और विशेषता बनाने रखेंगा। इस सम्बन्ध में मिल्टन सिंगर मिलंगे हैं - "भारत अमेरिका और यूरोप की कार्बन-कार्बन बनने नहीं होगा और जैसे अमेरिका व यूरोप एक-दूसरे से भिन्न हैं, भारत में आधुनिकता निश्चित रूप से भारतीय विशेषता"
लिये हुए हैं।"54

आजाद भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में आधुनिकीकरण को और भी तेज करने का प्रयास किया गया। ऊर्जा के क्षेत्र में जड़ रास्ते के अधिकतम प्रयोग से भारत में उद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। सूची कपड़े, खाद्य, दवाइयाँ, सीमेंट, मर्शिनें तथा अणुशक्ति के संयंत्र एवं कारखाने खोले गये। इसमें निस्संदेह लोगों की आमदनी में वृद्धि तथा जीवन स्तर में सुधार हुए हैं।

शायद इस बात पर अब बहुत बल देने की जरूरत नहीं कि आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को काफी तीव्रता प्रदान की। भारत में 1951 में मात्र 16 प्रतिशत लोग साक्षर थे और 1991 में वह 52 प्रतिशत हो गया। आधुनिक शिक्षा सभी धर्म एवं जाति के लोगों के लिए सुलभ हो गयी, इससे नीचे जातियों एवं जनजातियों के लोगों के शैक्षिक स्तर में मौलिक परिवर्तन हुए। शिक्षा एवं ज्ञान के क्षेत्र में निरंतर विशेषज्ञीकरण के प्रसार ने भी भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विस्तार किया। अतः शिक्षा भाषा वृद्धि चौड़ी वर्ग के उदय ने राष्ट्रीयता के विकास में अहम भूमिका निभाई। भारतीय संविधान ने भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को सरल बना दिया। जाति, धर्म, प्रजाति, लिंग, रंग आदि के आधार पर भेदभाव और दूरा को कानूनी रूप से समाप्त कर दिया गया। वैथिक स्तव्यवहार एवं समानता के अधिकार ने लोगों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन में कार्यशील परिवर्तन किया है। संयुक्त परिवार के परम्परागत मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। परिवार में शिक्षित सदस्यों एवं महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आये हैं। नारियों भी पीछे नहीं हैं। वे अपने अधिकारों की रक्षा के साथ-साथ जीवन के हर क्षेत्र में सहभागिता एवं अधिकार का दावा पेश कर रही हैं। नारियों में आंदोलन भी शहरों में काफी जोर पकड़ रहा है। पितृवृत्तात्मक मूल्यों के खिलाफ भारतीय नारियों जिहाद छेड़ चुकी हैं। नारियों को घर एवं घर के बाहर समृद्ध स्थान एवं समान मिल सके, इसके लिए बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाएँ काम कर रही हैं। भारत सरकार ने भी इस क्षेत्र में बहुत सारी योजनाओं को कार्यान्वित करने की कोशिश की है।

आजादी के बाद आर्थिक विकास एवं नगरीकरण की प्रक्रिया में काफी तेजी आयी है। आज भारत में 1991 की जनगणना के अनुसार लगभग 22 करोड़ लोग शहरों में रहते हैं जो कि भारत की कुल आबादी का लगभग 26 प्रतिशत है। दूसरी तरफ हम देखते हैं कि इस सदी के प्रारंभ में भारत में मात्र 2.6 करोड़ ही लोग शहरों में रहते थे, जो उस समय की आबादी का मात्र 11 प्रतिशत था। 1901 से लेकर 1991 के बीच नए गर्मों की संख्या 1,917 से बढ़कर 3,696 हो गयी है। ऐसे नए गर्मों की संख्या जिसकी आबादी 1 लाख से ऊपर है, 25 से बढ़कर 1991 में 300 हो गयी है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि 1999 में भारत में लगभग 25 करोड़ लोग शहरों में हैं। 30 ऐसे नए गर्मों जिसकी आबादी बढ़कर आज 10 लाख से ऊपर हो गयी है। 1950 में लगभग 22 प्रतिशत श्रमिक वर्ग खेती के कामों में जुड़े हुए थे और आज उद्योग, कला-कार्यालय एवं दलजोत में काम करने वाले श्रमिक वर्ग का अनुपात बढ़कर लगभग 40 प्रतिशत हो गया है, जिसके चलते विदेशी पूर्वी निवेश में भी तेजी आयी है। विभिन्न क्रिम्स के उद्योग खोले जा रहे हैं। उद्योगीकरण की प्रक्रिया में तेजी आने से आर्थिक विकास के दरों में भी तेजी आयी है। भारत में आधुनिकीकरण एक अति पूर्वीय स्थिति से गुजर रहा है। यदि एक तरफ आधुनिकीकरण की प्रक्रिया चल रही है तो दूसरी तरफ इसकी विरोधी प्रक्रियाएँ भी चलती नजर आती हैं। संस्कृतिकरण (Sanskritization), इस्लामीकरण (Islamization), जनजातीयकरण (Tribalization) इत्यादि जैसी संकीर्णकरण (Parochialization) की प्रक्रियाएँ आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को धीमी ही नहीं करती, बल्कि कभी-कभी तो कुछ लोगों को अनुप्रवृत्ति स्वरूप देती हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के बीच हमें भारतीय परिवर्तन भी है वह इसी संरचना के साथ परिवर्तन प्रक्रिया की चलती रहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का शुभारंभ जो मूलतः ब्रिटिश शासन से प्रारंभ हुआ था, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अत्यन्त तीव्र गति से भारतीय जन-जीवन पर छा गया। भारत के परम्परागत रहन-सहन, खान-पान, भाषा, वेश-पूर्व, स्थिति-त्योहार, परम्पराएँ, प्रथाएँ, जनरीतियों, रूढ़ियों, लोकविवादों, नागरिकता जीवन-शैली, शिक्षा, व्यवहार, प्रतिमाव, जाति प्रथा, विवाह, संयुक्त परिवार, नालेदारी एवं सम्पूर्ण रूप से भारतीय जनजीवन का आर्थिक,
सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पक्षों में आधुनिकीकरण की छाप किसी न किसी रूप में हमें दिखायी देती है। भारतीय जनजीवन का शायद ही ऐसा कोई पक्ष हो जो इस आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से पूर्णतः अदृश्य रहा हो। अतः भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अत्यंत बलवती एवं तीव्र रही है।

आधुनिकीकरण की समस्याएँ (Problem of Modernization)

आधुनिकीकरण का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति और समाज को विकासशील बनाना है। बहुत हद तक यह कल्याणकारी प्रक्रिया भी है, पर यह प्रक्रिया हमेशा कल्याणकारी नहीं होती। जब समाज परम्परागत व्यवस्था से आधुनिकता की ओर बढ़ता है तो कई बार हमें चाहे-अनचाहे विभिन्न किस्म की समस्याओं का झेलना पड़ता है, जिसे समाजशास्त्र की भाषा में आधुनिकीकरण का दुःखार्य (Dysfunctions of Modernization) कहते हैं। आधुनिकीकरण के दौरान शिक्षा का काफी प्रचार-प्रसार होता है। हर किसी को अपनी इच्छा और योग्यता के मुताबिक पढ़ने का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त होता है लेकिन अपनी योग्यता के अनुसार हर किसी को जीवनपथ के लिए नौकरियाँ नहीं मिल पाती हैं। काफी लोग पढ़-लिखकर बेकार हो जाते हैं, फतेहसूर रूप में नवगुड़ाकों को बहुत प्रकार की समस्याओं से गुजरना पड़ता है, जो सामाजिक तनाव, राजनीतिक अस्थिरता एवं शहरों में बढ़े हुए अपराधों में परिलक्षित होती है।

आधुनिकीकरण के द्वारा समाज के सभी तरुणों या अंगों में समान रूप से परिवर्तन नहीं आते, जिसके चलते सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में तनाव पैदा होते हैं। भारत में वर्ग व्यवस्था तो आयी है, लेकिन दूसरी तरफ जाति व्यवस्था ने राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में जड़ भी जमायी है। एक तरफ शिक्षा के द्वारा विद राष्ट्रवाद पनपा है तो दूसरी तरफ भाई-भातीजावाद, जातिवाद एवं क्षेत्रीयता भी बढ़ी है। नारी शिक्षा से कुछ अच्छे परिवर्तन आये हैं तो दूसरी तरफ पारिवारिक तनाव की घटनाओं एवं देशज प्रथा में बुद्धि हुई है।

आधुनिकीकरण के चलते समाज में आधुनिक एवं परम्परागत मूल्यों के बीच हमेशा तनाव की स्थिति बनी रहती है। जब लोगों को यह लगता है कि वे आधुनिक हो गये हैं और उस आधुनिकता
से कुछ खतरे हैं, तो वे पीछे मुड़कर फिर अपने धर्म और विश्वासों के पुनर्वास के लिए आन्दोलन चलाते हैं। समय-समय पर व्यक्ति इतना पीछे मुड़ जाता है कि लगता ही नहीं कि वह कभी आधुनिक था।

आधुनिकीकरण अक्सर व्यक्तियों में संशय की स्थिति उत्पन्न करता है, लोग एक साथ आधुनिक और परम्परागत दोनों होने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोग परिवार से लेकर राष्ट्रीय जीवन में भी द्वन्द्व भाव के चलते मनोवैज्ञानिक तनाव की स्थिति में जीते हैं। कभी-कभी लोग यह निर्णय नहीं ले पाते कि उनके लिए क्या अच्छा और क्या बुरा है। यही कारण है कि आज लोग इसने अस्वीकार है कि शायद उन्होंने पहले कभी नहीं थे। जब समाज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजरता है, तो व्यक्तियों के लिए नवाचूर्ण जीवन अवस्थायी हो जाता है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के चलते समाज के परम्परागत बन्धन टूटने लगते हैं। यहाँ तक कि अपने लोग भी परायो नजर आते हैं। लोग सामाजिक स्वार्थ को भूलकर व्यक्तिगत स्वार्थ में लीन हो जाते हैं। पुरानी संस्थाएं टूटने लगती हैं और नयी संस्थाएं उभरकर सामने आती हैं जो सापेक्षिक रूप से बहुत दीर्घचक्षु नहीं हो पातीं। समाज में सहयोग की भावना में कभी आ जाती है। ‘वयम’ भावना (‘We’ Feeling) ‘आहम’ भावना (‘I’ Feeling) का रूप ले लेती है। सामाजिक सहयोग और बन्धनों की जगह कानूनी संबंध (Legal Contract) ले लेती है। लोगों का जीवन सामाजिक नियमों से कम और राजकीय कानूनों से ज्यादा चलता है।

आधुनिकीकरण के अंतर्गत हर किसी को अपनी शर्मा, कार्यकुशलता एवं मेहनत के बल पर आगे बढ़ने का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त होता है पर प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कभी नहीं कर सकता है, जिसका नतीजा यह होता है कि लोग निरस्त्रावादी जीवन व्यतीत करने लगते हैं। जो लोग समाज में पिछड़ जाते हैं, वे पूरे समाज के लिए बोझ बन जाते हैं। कभी-कभी कुछ लोग निरस्त्र की स्थिति में विभिन्न क्रिया के अपराध कर बैठते हैं या पागल हो जाते हैं। सम्भवतः इसी कारण से आधुनिक युग में पहले की तुलना में पागलपन अधिक बढ़ा है।